

छायावादोत्तर गीतिकाव्य परम्परा के विकास में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की एम०फिल०
उपाधि के लिए प्रस्तुत

लघु-शोध प्रबन्ध

1999

निर्देशक :

प्रोफेसर अजब सिंह

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्.

शोधक :

मुहम्मद तौफीक़ खाँ

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए., बी.एड.

रोल नं० 153

U.9300

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

1999



18 APR 2002



DS3197

Fed in Computer





Professor Ajab Singh

B.A. Hons. M.A., Ph.D., D. Litt.

The International Man of the year, 1997-98

The Twentieth Century for Achievement Award, 1997-98.

The International Biographical Centre, Cambridge,
CB 230P (England).

Department of Hindi,
Aligarh Muslim University, Aligarh.

To Whom It May Concern

This is to certify that the dissertation entitled " Chhayavadottar Giti Kavya Parampara Ke Vikas Mein Gopal Singh Nepali Ka Yogdan" has been written by Mohammad Taufeeque Khan under my supervision . It is an original research work and is suitable for submission for the award of M.Phil degree in Hindi of the Aligarh Muslim University, Aligarh.

Ajab Singh
(Professor Ajab Singh)
Supervisor.

प्राक्कथन

“ छायावादोत्तर गीतिकाव्य परम्परा के विकास में गोपाल सिंह
‘नेपाली’ का योगदान ”

प्रथम अध्याय :

छायावादोत्तर काव्य का परिवेश एवं प्रवृत्तियों

क-सामाजिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि

ख-छायावादोत्तर काव्य धाराएँ

ग- छायावादोत्तर काव्य की प्रवृत्तियों

द्वितीय अध्याय :

छायावादोत्तर गीति-धारा का विकास

क-वैयक्तिक कविता

ख-राष्ट्रीय काव्यधारा

ग-छायावादी काव्य परम्परा से प्रभावित नव्यता प्रगीतकार

तृतीय अध्याय :

गीति काव्य का स्वरूप विश्लेषण

क-गीतिकाव्य का स्वरूप,

ख-गीतिकाव्य,

ग-भारतीय अवधारणा,

घ-गीतिकाव्य विषयक पाश्चात्य विश्लेषण

ङ-हिन्दी में गीतिकाव्य विषयक विश्लेषण

च-गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ

छ-हिन्दी गीतो की संभावनाएँ

चतुर्थ अध्याय :

गोपाल सिंह नेपाली का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- क-जन्म-तिथि
- ख-प्रारम्भिक जीवन
- ग-शिक्षा, साहित्य साधना
- घ-फिल्म जगत् में
- ङ-मृत्यु
- छ-विपन्नता के सहचर
- ज-स्वाधीन व्यक्तित्व, कृतित्व

पंचम अध्याय :

गीति काव्य के विकास में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान

- क-नेपाली की राष्ट्रीयता
- ख-नेपाली का प्रकृति चित्रण
- ग-यौवन-प्रेम और मस्ती के गीत
- घ-नेपाली सिंह की प्रगतिशीलता
- ङ-नेपाली के काव्यों में गीतितत्व

उपसंहार :

समग्र मूल्यांकन

प्राक्कथन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की एम. फिल. उपाधि के लिए प्रस्तुत पाँच अध्यायों में विभाजित इस लघु शोध-प्रबन्ध में छायावादोत्तर गीतिकाव्य परम्परा के विकास में गोपाल सिंह नेपाली का योगदान का गवेषणात्मक ढंग से अध्ययन किया गया है ।

छायावादोत्तर गीतिकाव्य परम्परा में गोपाल सिंह नेपाली का योगदान विषय मैंने इसलिए चुना क्योंकि सूर, तुलसी, जायसी, मीरा आदि के काव्यालोचन के माध्यम से प्राचीन हिन्दी गीतों पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ चुका था , पर आधुनिक गीतिकाव्य पर व्यापक अध्ययन करना अति आवश्यक था ।

मैंने गीतिकाव्य के छायावादोत्तर काव्य का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । छायावादोत्तर हिन्दी गीत प्राचीन की अपेक्षा अधिक व्यापक पृष्ठभूमि पर रचे गये हैं । उनके (क्षेत्र) परिपार्श्व अधिक विस्तृत है । उनमें बहुत अधिक विविधताएँ हैं, उनमें सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक तत्वों की ग्रहिका शक्ति है । उनमें वैयक्तिकता का प्रबल विस्फोट है और मानव जीवन के अधिक रागात्मक स्तरों का चित्रण है । प्रकृति के रूप-रंग की इन गीतों में अधिक सूक्ष्म लकीरे हैं, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटी पर छायावादोत्तर गीतकार बहुत अधिक खरा उतरते हैं ।

हिन्दी की नयी कविता का आज की अन्य भंगिमा की कविताओं में भाषा, छन्द, मिथक, बिम्ब, प्रतीक, प्रगीत एवं रूपक की अभिव्यक्ति नये रूपों में होती है । ऐसी स्थिति में आधुनिक कविता शिल्पगत धरातल पर व्यक्तिपरक ही रहती है । क्योंकि

भाषा, छन्द, मिथ, बिम्ब प्रतीक, प्रगीत एवं रूपक कवि की मन की उपज है । आधुनिक हिन्दी कविता स्वच्छन्दतावाद के अनन्तर एक नया मोड़ लेती है । इस बिन्दु पर हिन्दी कविता स्वच्छन्दतावादी बोध से छुटकारा पाने के लिए छटपटाती तो है लेकिन उसकी साधना विफल रहती है । लेकिन यहाँ स्वच्छन्दतावाद में यथार्थवाद का संयोग होने के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद एक नये रूप में दिखाई पड़ता है । इसलिए स्वच्छन्दतावादी या छायावादी दौर के पश्चात् की कविताओं में स्वच्छन्दतावादी आधुनिक बोध को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । इसे ही नवस्वच्छन्दतावाद, नवरोमनवाद के नाम से अभिहित किया जा सकता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी नवस्वच्छन्दतावादी विचारधाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ आज की कविताओं में भी मिलती है ।

मेरी अपनी दृष्टि में आधुनिक हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावादी चेतना का ही स्पन्दन है क्योंकि इसमें रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर बहुत साफ है । फिर वह विद्रोह चाहे समाज की रूढ़ियों के प्रति हो, चाहे साहित्य की कलात्मक सत्ता के प्रति हो । इसलिए हिन्दी छायावादोत्तर काव्य की सारी प्रवृत्तियों को नवस्वच्छन्दतावाद नाम से सम्बोधित किया जाना चाहिए ।^१

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध पाँच अध्याय में विभाजित है । प्रथम अध्याय में छायावादोत्तर काव्य का परिवेश एवं प्रवृत्तियों का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसके अन्तर्गत छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि, काव्य धाराएँ, प्रवृत्तियों आदि का वर्णन है ।

^१ डॉ. अजब सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद, पृ. ६१

द्वितीय अध्याय में छायावादोत्तर गीति-धारा का विकास किस प्रकार हुआ उसका विस्तृत वर्णन किया गया है । तृतीय अध्याय में गीतिकाव्य का स्वरूप विश्लेषण पर प्रकाश डाला गया है । जिसके अन्तर्गत गीतिकाव्य क्या है तथा उस पर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों का क्या मत है ? गीत तत्व और प्रगीत तत्व क्या है ? गीतात्मकता और स्वच्छन्दतावादी चेतना का गहन अध्ययन किया गया है । चतुर्थ अध्याय में गोपाल सिंह 'नेपाली' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है और पंचम अध्याय में गीतिकाव्य के विकास में गोपालसिंह 'नेपाली' के योगदान का वर्णन किया गया है ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध की प्रस्तुतीकरण में अनेक विद्वानों की कृतियों एवं परामर्शों का प्रासंगिक उपयोग किया गया है जिसके लिए मैं उनका सबका आभारी हूँ । अध्ययन अन्वेषण के क्रम में मुझे अपने निर्देशक गुरुवर श्रद्धेय प्रोफेसर अजब सिंह का सहयोग संबल का लाभ सदैव मिला है । यही कारण है कि मेरे इस अनुसंधान अध्ययन विश्लेषण में प्रखरता, नवीनता एवं मौलिकता आ सकी है । इसके लिए मैं गुरुवर प्रो. अजब सिंह के प्रति श्रद्धावनत हूँ ।

जिन मनीषी विद्वानों के सत्-परामर्शों एवं पुस्तकों ने मुझे विशेष रूप से लाभान्वित किया है उनमें हमारे विभाग के समस्त गुरुजन विशेष रूप से डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, डॉ. शैलेश जैदी, डॉ. कुँवर पाल सिंह, डॉ. कृष्ण मुरारी मिश्र, (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) डॉ. बुद्धसेन नीहार, डॉ. उदय शंकर श्रीवास्तव, डॉ. अब्दुल अलीम, डॉ. आरिफ नज़ीर, डॉ. आशिक अली, डॉ. भरत सिंह, डॉ. इफ्फत असगर, डॉ. शर्मीला डॉली कुहूसी और गुरुवर डॉ. अजब सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध का कार्य करने में मुझे मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़ के डॉ. राधेश्याम, राकि अली एवं मुहम्मद आसिफ खॉ के सहयोग के लिए भी मैं ऋणी हूँ ।

इस अवसर पर मित्रों एवं स्नेहियों की याद स्वाभाविक है, जिनकी प्रेरणा-प्रोत्साहन एवं स्नेह से यह कार्य आगे बढ़ सका है । उनमें मु. अशफाक खॉ, इफ्त नाज खॉ, शशिभूषण एवं अनुज मुहम्मद एखलाक खॉ, औरंगजेब खॉ, मु. सरताज खॉ, मु. शमशाद खॉ मुख्य हैं ।

मेरे अपने गाँव के मित्रों, शुभचिन्तकों की स्मृति इस अवसर पर स्वाभाविक है, जिनमें आपताब खॉ, खालू मु. बाऊद खॉ, ससुर मुहम्मदीन खॉ एवं इम्तियाज अहमद खॉ (प्रधानाचार्य बारा इण्टर कालेज, माजीपुर) उल्लेखनीय है ।

इस अवसर पर अपनी जीवन संगिनी श्रीमती यासमीन खातून को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ क्योंकि लघु-शोध के प्रणयन के प्रवास कार्य में इन्हें उचित स्नेह भी न दे सका था । इस अन्तर्यात्मा की सफलता का श्रेय पूज्य पिता हाजी वशीर अहमद खॉ तथा तथा ममतामयी माँ हसबुन निशा, श्रद्धेय अग्रज भाई श्री इफ्तेखार हुसैन खॉ (प्रधान बहुअरा), मु. इसरार खॉ, मु. इबरार खॉ, मु. तौवाब खॉ एवं अनुजा तैला खातून को है जिन्होंने इस कार्य के लिए हमें परिवारिक दायित्वों से अलग रखा ।

अन्त में मैं अपने उन सभी स्वजनों, प्रियजनों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी सहायता मुझे किसी न किसी रूप में मिली है ।

रक्षाबन्धन,
२६ अगस्त, १९९९

विनीत,
मुहम्मद तौफीक खॉ
(शोधकर्ता)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रथम अध्याय

छायावादोत्तर काव्य का परिवेश एवं प्रवृत्तियाँ

(अ) सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि :

सन् १९३६ में छायावाद के उत्कर्ष-युग की समाप्ति के बाद हिन्दी साहित्य में अनेक नई प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होने लगी, इन नई प्रवृत्तियों का आधार नई ऐतिहासिक परिस्थितियाँ थीं । ऐतिहासिक कालक्रम के हिसाब से छायावाद के बाद प्रगतिवाद काव्य-युग प्रारम्भ हुआ, किन्तु इसके समानान्तर ही एक वैयक्तिक गीतिधारा का या मौज, मस्ती और जवानी की काव्यधारा की अभिव्यक्ति होती रही, जिसका प्रारम्भ बच्चन के 'हालावाद' से हुआ था । यह आश्चर्यजनक बात है कि ये दोनों लगभग विरोधी प्रवृत्तियाँ साहित्य में एक साथ विकसित हुई इसका कारण सामाजिक यथार्थ के प्रति दो भिन्न प्रतिक्रिया पद्धतियों का एक साथ सक्रिय होना था ।

सन् १९३६ के पूर्व हिन्दुस्तान की जनता ने दो बड़े राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लिया था- एक असहयोग आन्दोलन (१९२०-१९२२) और दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन (१९३०-१९३४) इन दोनों को अंग्रेजों ने दण्ड दिया । फिर भी हिन्दुस्तान की जनता ने इन आन्दोलनों के कई महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले । एक तो यह कि बिना स्वराज्य पाये हम सम्मानपूर्वक जीवित नहीं रह सकते । यही नहीं हमारे समाज की दरिद्रता, अज्ञान, अन्धविश्वास का वास्तविक कारण अंग्रेजी राज्य है । अंग्रेज विदेशी हैं, अतः हमारे देश का शासन वे अपने देश के हित को ध्यान में रखकर करते हैं । हिन्दुस्तान को सभ्य बनाने के लिए अंग्रेज यहाँ नहीं आये, बल्कि शोषण करने आये हैं । अंग्रेजी साम्राज्य भारतीय जनता की आकांक्षा पर टिका हुआ नहीं है

बल्कि डंडे के जोर पर टिका हुआ है । इसके अलावा जो सबसे महत्वपूर्ण अनुभव हुआ वह यह था कि हिन्दुस्तान की निहत्थी जनता संगठित ब्रिटिश साम्राज्य से टक्कर ले सकती है । भले ही वह अभी जीत न पाई हो । इसके अलावा नेताओं ने यह महसूस किया कि अभी भारत में और ज्यादा राजनीतिक चेतना फैलाने की ओर अधिक सक्रिय संगठन बनाने की जरूरत है । इसके बावजूद दो आन्दोलनों के विफल हो जाने के, अन्तिम जीत का आदर्श उनके साथ रहा । अप्रैल, १९३६ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस के आधुनिक इतिहास का प्रारम्भ होता है । इसकी अध्यक्षता भी लाहौर कांग्रेस की तरह पं. जवाहर लाल नेहरू ने की थी । इसमें उन्होंने समाजवादी तथ्यों की घोषणा को फासीवाद और प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध दुनिया की जनता के बढ़ते संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में भारतीय जनता के संघर्ष को सामने रखा और साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का एक ऐसा व्यापक जनमोर्चा या 'संयुक्त जनमोर्चा' बनाने की मांग की जिसमें मजदूरों और किसानों को मध्यवर्गीय तथ्यों के साथ, जिनका कांग्रेस में प्रतिनिधित्व है, एकताबद्ध किया जा सके । सभी दिशाओं में एक नई हलचल दिखाई पड़ने लगी थी । कांग्रेस के अन्दर समाजवादी खेमा मजबूत होता जा रहा था । लखनऊ अधिवेशन में वह समाजवादी गुट संख्या की दृष्टि से तो छोटा था, पर वैसे काफी महत्वपूर्ण था । लेकिन १९३६ में जब फैजपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उस समय कांग्रेस कमेटी के एक तिहाई सदस्य समाजवादी खेमें के थे ।^१

लखनऊ कांग्रेस के इस महत्व के पिछेक पाँच छह वर्षों के जनसंघर्ष का अनुभव था । सन् १९३० से तो भारत में मजदूर वर्ग की शक्ति बढ़ चुकी थी । इस शक्ति

^१ आज का भारत , पृ. ५२३

का एहसास नेताओं और बुद्धिजीवियों को भी होने लगी थी । गॉंधी जी ने इस शक्ति के प्रति चिन्ता व्यक्त की थी । मजदूरों की ट्रेड यूनियन ने कई सफल और संगठित हड़तालें की थी । किसानों की 'अखिल भारतीय किसान सभा' का गठन होने लगा था । इसके अलावा १९२५ में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हो गया था । गुप्त रूप से 'लाल साहित्य' हिन्दुस्तान में प्रचारित - प्रसारित होने लगा था । शिक्षित भारतीयों पर समाजवादी विचारों का गहरा असर इस दशक में पड़ा था । सन् १९३६ में 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का प्रथम अधिवेशन उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ और इसके साथ ही हिन्दी में 'प्रगतिवादी' साहित्य पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ जिसका उद्देश्य शोषित वर्ग को उसके अधिकार प्राप्ति के संघर्ष में सहायता देना था ।

इस अधिवेशन द्वारा जहाँ हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित साहित्य का सृजन, प्रचार और प्रसार होने लगा, वही समाज में युवकों की भूमिका को भी महत्व मिला । अब कुछ सामाजिक समस्याओं में पुरानी पीढ़ी के लोगों की अनुभव-सम्पन्न व्यवहारिक दृष्टि का वर्चस्व हुआ करता था , अब एकाएक युवकों के उत्साह की तूती बोलने लगी । साहित्य और राजनीति में युवकों को पहली बार सम्मान और नेतृत्व संचालन का मौका मिला जबकि इसी अवसर के लिए छायावादी युवक कवियों को पुराने प्रतिष्ठित साहित्यकारों से बहुत संघर्ष करना था । भगवती चरण वर्मा, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि के 'जवानी के काव्य' की पृष्ठभूमि में युवकों का यह महत्व बोलता है । जिसमें 'मस्ती' और 'भौज' को मूल्य का स्थान मिला है । प्रगतिवादी काव्य में भी जो 'अतिरिक्त उत्साह' 'बड़बोलापन' और अन्धात्म-विश्वास की प्रवृत्तियों लक्षित होती हैं वे इसी युवकीय उच्छाह से प्रेरित हैं जिसका परिमार्जन धीमे-धीमे हुआ । इसके अतिरिक्त

भारतीय जनता का स्वाधीनता आन्दोलन विश्व की युक्तिकामी जनता के संघर्ष का अंग बन गया ।

सन् १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये । कांग्रेस ने इस सुधार का विरोध किया । इसमें 'प्रान्तीय स्वशासन' की व्यवस्था की गयी थी, लेकिन सारा शक्ति गवर्नर के हाथ में केन्द्रित थी । सरकार और कांग्रेस के बीच कई दिनों तक बातचीत चली और अन्त में कांग्रेस चुनाव में भाग लेने पर तैयार हो गयी । सन् १९३६ में चुनाव हुए, इसमें कांग्रेस को अप्रत्याशित सफलता मिली । जुलाई, १९३६ में छः प्रान्तों में कांग्रेस की जीत हुई थी । ये सरकार दो वर्ष तक चली । केन्द्र से अनबन हो जाने के कारण विश्वयुद्ध से उत्पन्न संकट के कारण नवम्बर, १९३६ को इन सरकारों ने इस्तीफा दे दिया । इनका जनचेतना पर काफी लाभदायक असर पड़ा । एक तो यह है कि भारतीय नेता भारत का शासन चलाने में समर्थ हैं । दूसरे यह कि इन्होंने राजनीति के साफ सुथरे स्वरूप को सामने रखा । फिर भी इन सरकारों का मूलचरित्र साम्राज्यवाद का पक्षधर ही रहा । वे अंग्रेजों के अस्त्र की तरह ही सरकार चला रहे थे । इससे कांग्रेस में फूट के लक्षण दिखाई देने लगे थे । इसका एक कारण यह भी था कि कांग्रेस के भीतर समाजवादी गुट की शक्ति बहुत बढ़ गयी थी और यह गुप्त पुराने नेताओं की समझौतापरस्त नीति से क्षुब्ध था । इसके नेता सुभाषचन्द्र बोस थे । सन् १९३९ में सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ने का फैसला किया । गान्धी जी और पुराने नेताओं ने पट्टामिसी तारामैया का साथ दिया । सुभाषचन्द्र बोस को वामपंथी राष्ट्रवादियों, सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का समर्थन मिला । कांग्रेस के भीतर विरोधी विचारों का संघर्ष खुले रूप से हुआ । इसी समय गान्धी जी ने एक बयान दिया जिसमें उन्होंने कहा कि कांग्रेस एक 'भ्रष्ट

संगठन' है जिसमें फर्जी सदस्यों को इकट्ठा कर लिया गया है । गान्धी जी के व्यक्तिगत दबाव के कारण कांग्रेस कार्य समिति ने नये अध्यक्ष के साथ असहयोग किया और कार्यसमिति के १५ सदस्यों में से १२ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया । विचित्र बात यह है कि इस्तीफा देनेवालों में जवाहर लाल नेहरू भी थे । कांग्रेस में पैदा हुए इस संकट से उबरने के लिए अनेक प्रयास किये गये और दबाव डाले गये । फलतः अप्रैल, १९३९ को सुभाष चन्द्र बोस ने इस्तीफा दे दिया । उनके जगह राजेन्द्र प्रसाद नये अध्यक्ष बने । सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस के अन्दर दक्षिण-पंथियों से लड़ने के लिए ' फावर्ड ब्लाक' की स्थापना की ।

रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा छोटपुट अन्य राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य संघर्षों में वामपंथी राष्ट्रवादियों और गान्धी जी की नीतियों की एक अजीब खिचड़ी मिलती है । फिर भी उनका रुझान स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय वामपंथियों के प्रति है । 'रेणुका' आदि में और अन्य सभी रचनाओं में भी दिनकर जोश और हिंसा के समर्थक रहे हैं ।

इधर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में साम्राज्यवादी देशों के आन्तरिक विरोध बहुत उग्र हो गये थे । इटली में फाजिस्म का उदय जर्मन में नाजी-दल की विजय के साथ ही ये अन्तर्विरोध और ज्यादा बढ़े । फलतः दूसरा विश्व युद्ध शुरू हुआ । सितम्बर १९३९ को हिटलर ने युद्ध की घोषणा कर दी । युद्ध शुरू होते ही इंग्लैण्ड ने भारत को भी युद्ध में शामिल करने का फैसला किया । कांग्रेस और गान्धी जी ने इस नीति की आलोचना की , इसे साम्राज्यवादी युद्ध ठहराया और 'अहिंसक' भारत को उससे अलग ही रखने का प्रयास किया । विश्वयुद्ध के शुरू होने से पहले ही हिटलर ने स्टालिन से संधि की जिसके अनुसार दोनों एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे । भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने रूस के अनुसार ही अपनी राजनीति तय की और युद्ध विरोधी

प्रचार किया । कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी थी परन्तु कानूनी जन आन्दोलन के साथ गैर कानूनी क्रान्तिकारी विचारों के प्रसार का कार्य भी करती थी । सरकार ने कम्युनिस्टों को पकड़-पकड़ कर कड़ी सजाये दी । इधर कांग्रेस के सोशलिस्ट गुट ने भी 'हिंसक' कम्युनिस्टों की आलोचना की और कांग्रेस से उन लोगों को निकालकर बाहर किया जिन पर कम्युनिस्ट होने का संदेह था । अंग्रेजों ने विश्वयुद्ध में भारत से सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की । कांग्रेस ने प्रस्ताव रखा कि स्वाधीन भारत ही फासिज्म विरोधी युद्ध में ब्रिटेन की सहायता कर सकता है । अतः अस्थायी सरकार का गठन करके भारत को स्वतंत्र कर दिया जाये । अंग्रेजों ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया । कांग्रेस असमंजस की स्थिति में थी । एक तरफ उसे फासिज्म से उत्पन्न खतरे का अहसास था तथा दूसरी तरफ अंग्रेजी साम्राज्यवाद से भी छुटकारा पाना था । इसी बीच २२ जून, १९४१ को हिटलर ने रूस पर आक्रमण कर दिया । ७ दिसम्बर, १९४१ को जापान ने अमेरिकी बेड़े पर आक्रमण करके जर्मन की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी । जापानी सेना इंडोचीन को पार करती हुई तेजी से वर्मा की ओर बढ़ने लगी । नयी परिस्थितियों में यह शक्ति-संतुलन बिखर गया ।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने घोषित किया कि यह युद्ध अब साम्राज्यावादी युद्ध नहीं रह गया है अतः इसके परिणामों के प्रति तटस्थ नहीं रहा जा सकता है । यह जनता और फासिज्म का युद्ध है, लोकयुद्ध है । अतः हमें बिना किसी शर्त के युद्ध में अंग्रेजों का साथ देना चाहिए । कम्युनिस्ट पार्टी की घोषणा का प्रभाव यह पड़ा कि वह अब एक कानूनी संस्था हो गयी । सन् १९४२ में कम्युनिस्ट पार्टी को राजकीय मान्यता मिल गयी । अब कम्युनिस्ट अखबार व पत्र-पत्रिकाएँ भी छपने लगे ।

कम्युनिस्ट पार्टी ने फासिज्म विरोधी प्रचार किया । लेखकों ने भी इसमें भाग लिया ।

सन् १९४३ में 'तार सप्तक' में भारत भूषण अग्रवाल ने लिखा-

लो क्षितिज के पास-

वह उठा तारा, अरे, वह लाल तारा, नयन का तारा हमारा

सर्वहारा का सहारा

विजय का विश्वास^१

एक पूरा साहित्यालोचन 'प्रगतिवाद' के नाम से साहित्य में चला । देखने लायक बात यह थी कि नेताओं में आजादी का उत्साह नहीं था बल्कि एक खाश तरह का सन्तोष या जिसके नीचे गहरे विषाद का दरिया था ।

देश के आजाद होने के बाद गोंधी जी राजनीति से अलग रहने लगे । सत्ता की लूट से वे अलग थे और निराश भी थे । अंत में ३० जनवरी १९४८ को नाथू राम गोडसे ने गोंधी जी को गोली मारकर हत्या कर दी । अपनी हत्या के चार दिन पहले २६ जनवरी, १९४८ को गोंधी ने कहा था कि २६ जनवरी का यह दिन स्वाधीनता दिवस है । इस दिवस को मानना उस समय उपयुक्त था जब हम उस स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे थे जिसे न हमने देखा था और न जिसका संचालन किया था । अब हमने इसका संचालन कर लिया और हमारा मोह भंग हो गया । कम से कम मेरी तो यही स्थिति है, आपकी चाहे हो या न हो ।^२

^१ सम्पादक-अज्ञेय, तार-सप्तक, पृ. १०५

^२ आज का भारत, रजनी पामदत्त, पृ. ९

बाद में भारतीय बुद्धिजीवियों ने भी महसूस किया कि हमें मिलने वाली आजादी झूठी है क्योंकि आज तक भारतीय नागरिक आर्थिक वैषम्यों एवं राजनीतिक भ्रष्टाचारों से जकड़े हुए हैं ।

उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण हिन्दी साहित्य में १९३६ से १९५० तक विविध काव्यधाराएँ विकसित हुईं जिनमें ऐतिहासिक कालक्रम के हिसाब से 'वैयक्तिक गीतिधारा' और 'प्रगतिवाद' छायावाद के तुरन्त समानान्तर विकसित होनेवाली काव्य-प्रवृत्तियाँ हैं ।

(आ) छायावादोत्तर काव्यधाराएँ :

उत्तर छायावादी काव्य के वैयक्तिक गीतिकाव्य का प्रारम्भ बच्चन की 'मधुशाला' से होता है । इसी संदर्भ में बच्चन की मधुशाला (१९३६) और मधुकलश (१९३७) भी व्याख्यायित किये जाते हैं । इन कृतियों के साथ हिन्दी साहित्य में 'हालावाद' शब्द का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु यह प्रवृत्ति आलोचकों द्वारा मान्यता प्राप्त न कर सका । फलतः इस प्रवृत्ति-विशेष का विलयन वैयक्तिक गीतिधारा में ही हो गया । इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं : नरेन्द्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, गोपाल शरण सिंह, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि । यह काव्य छायावादी भावुकता, प्रेम, निराशा आदि पर आधारित है और पूरी तरह छायावादी काव्य का पराश्रय काव्य है । कवियों का यह वर्ग उथल-पुथलपूर्ण नई परिस्थितियों को आत्मसात् करता हुआ उनका विकासवादी रूप न पहचान सका । फलतः वह सारी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से पलायन के रूप में नितान्त वैयक्तिक विषयों पर भावुकतापूर्ण कविताएँ लिखने लगा । यह काव्य पलायन का इकहरा रूप प्रस्तुत करता है कि छायावादी काव्य में 'प्राप्त संस्कृतिक भव्यता और दार्शनिक चिन्तन के रूप में मनुष्य के प्रति जिम्मेदारी से भी नितान्त अछूता है । वस्तुतः यह एक पतनशील काव्य

है यद्यपि सहजता, प्रवाह, सादगी और मस्ती जैसे कुछ स्पृहणीय तत्व इस काव्य में आद्योपान्त प्रवाहित है। इस धारा की प्रमुख रचनाएँ हैं—' निशा निमंत्रण, मिलन यामिनी एकान्त संगीत अपलक, ज्वासि, मधुकण, पलाशवन, रसवन्ती, मानवी, मधुलिका, कलापि, संचित, अपराजिता, किरण वेला , हिमकिरीटिनी, सुषमा, प्रत्यूष की भटकी किरण, यायावरी तथा प्रो. क्षेम की ' जीवन तरी' । इसके अतिरिक्त कुछ छुटपुट रचनाएँ अन्य काव्य संग्रहों में बिखरी हुई हैं । वैयक्तिक गीतिधारा के अन्तर्गत ही सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय गीतिधारा भी आती है जिनमें भावुकता और प्रवाह, ओज के साथ राष्ट्रीय भावनाओं को गीतों में प्रस्तुत किया गया है । इनकी श्रृंगारपरक कविताएँ बच्चन आदि की कविताओं के साथ ही रखी जायेगी ।

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद का आरम्भ स्वयं छायावादियों ने किया । पंत जी का प्रगतिवादी रूप ' युगान्त', 'युगवाणी,' और 'ग्राम्या' में देखा जा सकता है । बाद में अरविन्द-दर्शन की ओर मुड़ गये । निराला जी की ' वह तोड़ती पत्थर', 'अणिमा,' 'नये पत्ते,' और 'कुकुरमुत्ता' आदि प्रगतिवादी रचनाएँ हैं । इसके अतिरिक्त रामविलास शर्मा की 'अगिया वैताल' और नागार्जुन की 'युगधारी', केदारनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा' और 'लोक आलोक,' त्रिलोचन शास्त्री की 'धरती' शिवमंगल सिंह 'सुमन' की 'हिल्लोक', ' जीवन के गान,' पांचाली,' गिरिजाकुमार माथुर की ' नाश और निर्माणा', 'धूप के धान', ' एशिया जागरण;', 'आग और फूल,' सूरज का पहिया,' 'सायंकाल,' दिनकर की 'हुकार', और 'दिल्ली', भगवती चरण वर्मा की 'भैसागाड़ी,' तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की और शमशेर बहुदर की अनेक कविताएँ इस धारा में आती हैं ।

यह काव्यधारा उस भारतीय चेतना का परिणाम है जिसने अपनी समकालीन परिस्थितियों में छिपे विकासशील पक्ष को पहचाना और मानवीय शक्ति में विश्वास रखते हुए उसके प्रति सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की । 'सविनय अवज्ञा आन्दोल' और असहयोग आन्दोलन' की विफलता ने जहाँ छायावादियों और वैयक्तिक गीतकारों में अवसाद निराशा और अन्य पलायनवादी प्रवृत्तियों को हवा दी वहाँ प्रगतिवादियों ने इस आन्दोलनों की व्यापकता पर दृष्टि रखते हुए नई आशा ग्रहण की । इसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं से बचकर जहाँ बच्चन आदि रुग्ण प्रेम-कविताएँ लिख रहे थे वहाँ प्रगतिवादी कवियों में सम्राज्यवादी शक्तियों के प्रति घृणा और प्रतिकार की शक्तियाँ विकसित हो रही थी । रूस की सफल राज्य क्रान्ति, जवाहर लाल नेहरू द्वारा १९३६ में कांग्रेस के अधिवेशन में समाजवादी लक्ष्यों की घोषणा आदि घटनाएँ प्रगतिवादी साहित्य की प्रेरणाश्रोत थी ।

प्रगतिवादी और वैयक्तिक कविता-धारा की कविताएँ १९३५ के आस-पास प्रारम्भ हो गयी थी । १९४३ ई. के आस-पास हिन्दी साहित्य में नयी प्रयोगशील प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगी । 'तार-सप्तक' कविता संग्रह (१९४३) 'से हिन्दी साहित्य में विधिवत प्रयोगवाद की चर्चा होने लगी । 'तार सप्तक' में छपने वाले सभी कवि प्रयोगवादी नहीं हैं । इस विषय में डॉ. नामवर सिंह का कथन द्रष्टव्य है-

हिन्दी कविता के पाठकों में 'प्रयोगवाद' की चर्चा तार-सप्तक कविता संग्रह (१९४३) से शुरू हुई , 'प्रतीक' पत्रिका (जुलाई-१९४७-१९५०ई.) से उसे बल मिला और दूसरा 'सप्तक' कविता संग्रह (१९५०) से उसकी स्थापना हुई । इसका मतलब यह नहीं कि इस सब में जितनी कविताएँ छपी सभी प्रयोगवादी हैं । कविताएँ तो 'प्रतीक' में मैथिलिशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत और 'नवीन' से लेकर नागार्जुन, त्रिलोचन आदि

तक की छपी और सप्तकों में भी रामविलास शर्मा तथा भवानी प्रसाद मिश्र को रखा गया है लेकिन प्रयोगवाद सम्बन्धी जो औसत धारणा बनी है, वह इन सबके बावजूद केवल अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र, भारतभूषण, शमशेर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि की रचनाओं पर आधारित है ।

तार सप्तक में 'प्रयोग' और 'प्रयोगशीलता' के स्पष्टतः तारसप्तक की विशेषता कहा गया है । यह कविता प्रगतिवादी कविता की अत्यन्त सपाटब्यानी का विरोध करते हुए साहित्य शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों पर बल देते हुए लिखी गयी । इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध, 'भारत छोड़ो आन्दोलन,' (१९४२) और भारत तथा पाकिस्तान के बटवारे से उत्पन्न भय, संत्रास, असुरक्षा से उत्पन्न 'अहं' को आधार बनाती हुई वह काव्यधारा विकसित हुई । बढ़ते हुए पूँजीवाद के समय ही मध्यवर्ग की स्थिति अधिकाधिक तनावपूर्ण होने लगी और दो वर्गों के बीच अपने को असुरक्षित महसूस करते हुए मध्यवर्ग में भयानक व्यक्तिवाद की व्याप्ति हुई । प्रयोगवाद इसी व्यक्तिवाद में समाज से कटकर अकेले व्यक्ति के अस्तित्व सम्बन्धी खतरों में विकृत मनुष्य को उपस्थित करता है । फलतः अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव बहुत मात्रा में इन पर पड़ा । इस धारा के प्रमुख कवि हैं- अज्ञेय, धर्मवीर भारती, डॉ. जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मीकान्त वर्मा और गिरिजाकुमार माथुर । 'दूसरा' सप्तक के अधिकांश कवि भी इस धारा में आयेगें ।

इस धारा की कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं- तार सप्तक, इत्यलय, 'हरी घास पर क्षण भर ,' ' नाश और निर्माण,' ' ठण्डा लोहा,' ' नौव के पौव,' तथा दूसरा सप्तक' ।

प्रयोगवाद आगे चलकर 'नई कविता' में परिवर्तित हो गया । इसी लिए 'नई कविता' में प्रयोगवाद के बहुत से तत्व मिलते हैं । किन्तु नई कविता अधिक व्यापक, उदार और मानवीय परिप्रेक्ष्य लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत की समस्याओं को काव्य विषय बनाती हुई विकसित हुई । इसका आग्रह प्रयोगशीलता पर न होकर सहज कलात्मकता के साथ जीवन वैविध्य के मानव कल्याण की आकाक्षा से चित्रण पर है । वस्तुतः नई कविता में प्रयोगवाद और प्रगतिवाद के महत्वपूर्ण तत्वों के सन्तुलन का प्रयास मिलता है । सन् १९५० के बाद नये भावबोध की जो कविताएँ लिखी गयी वे नई कविताएँ हैं और प्रयोगवादियों की भी सन् १९५० के बाद की कविताएँ नई कविता में ही आती हैं । किन्तु 'दूसरा सप्तक' अपने व्यक्तिवादी रुझान के कारण प्रयोगवाद के अन्तर्गत ही रखा जाता है । इस लिए नई कविता को प्रयोगवाद के ही क्रम में देखा जाना चाहिए । सन् १९५० को भेदक रेखा माना जाये तो 'तीसरा सप्तक,' 'बावरा अहेरी,' इन्द्रधनु रौदे हुए,' 'अरी ओ करुणा प्रभामय, (अज्ञेय) 'धूप के धान, शिलापंख चमकीले,' (गिरिजाकुमार माथुर) अर्धशती (बालकृष्ण राव) अनागता की आँखें (वीरेन्द्र कुमार जैन) 'माध्यम में,' 'खण्डित सेतु,' (सम्भूनाथ सिंह) कुछ और कविताएँ, (शमशेर) 'गीत फरोश' 'चकित है दुःख,' 'बुनी हुई रस्सी,' (भगवती प्रसाद मिश्र) 'स्वप्न भंग,' 'अनुक्षण,' 'मेपल,' (प्रभाकर माचवे) 'चौद का मुह टेढ़ा है,' (मुक्तिबोध) 'ओ अप्रस्तुत मन,' (भारत भूषण अग्रवाल) 'वनपाखी सुनो,' 'संशय की एक रात,' (नरेश मेहता) 'मछली घर,' (विजयदेव नारायण साही), 'काठ की घंटिया,' 'बांस के पुल,' 'एक सुनी नाव,' 'सिद्धियों पर धूप में,' आत्म हत्या के विरुद्ध, (रघुवीर सहाय) 'अभी बिल्कुल अभी,' (केदार नाथ सिंह) नई कविता की प्रमुख रचनाएँ हैं ।

हिन्दी साहित्य में सन् १९६० तक अर्थात् राजनीतिक दृष्टि से नेहरू युग तक एक विशिष्ट सौन्दर्यशाली रुझान रहा जिसके अन्तर्गत छायावाद के अवशेष ओर अनुवादित शब्द, भाव, भाषा आदि साहित्य में किसी न किसी प्रकार व्यक्त होते हैं जैसा डॉ. केदारनाथ सिंह ने सन् १९६० के बाद की हिन्दी की कविता शीर्षक निबन्ध में कहा है - 'संभवतः नवलेखन के क्षेत्र में यह सौन्दर्यवादी रुझान कुछ दिनों तक और चलता रहता- यदि अकस्मात् सन् १९६२ के राष्ट्रीय संकट ने साहित्य तथा राजनीति में एक ही साथ बहुत से मोहक आदर्शों और खोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति हमारे मन में एक विराट शंका न भर दी होती । परिणाम यह हुआ कि कुछ आधुनिक विचारकों और विशेष रूप से नई पीढ़ी के रचनाकारों के भीतर नवलेखन के इस सौन्दर्यवादी रुझान के विरुद्ध एक सीधी प्रतिक्रिया हुई । सर्जनात्मक विद्रोह के वे तत्व जो अज्ञेय आदि की कृतियों से गायब हो गये थे, इन रचनाकारों की कृतियों में उभर कर आने लगे । इस अन्तर के साथ कि इनके विद्रोह के पीछे काम करनेवाला मानसिक विक्षोभ 'साहित्यिक' कम है और 'ऐतिहासिक' अधिक है ।

उपर्युक्त विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए हम नई कविता के अन्तर्गत १९६०-६१ तक की ही रचनाओं को लेंगे । इसके बाद तो अकविता, सहज कविता आदि अनेक सतही काव्य आन्दोलन उठ खड़े हुये, जिनका अब मात्र ऐतिहासिक महत्व रह गया है । आज कल पत्र-पत्रिकाओं में छपनेवाली चर्चित कविताओं को 'जनवादी कविता' के नाम से प्रस्थापित किया जा रहा है । ये कविताएँ छायावादी संस्कारों से सर्वथा मुक्त हैं ।

छायावादोत्तर काव्य की प्रवृत्तियाँ :

उत्तर छायावादी कविता की प्रवृत्तियों का नामकरण अनेक दृष्टियों से किया गया है । डॉ. नगेन्द्र ने इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसे पाँच विभिन्न धाराओं

में विभक्त किया है- ^१(क) राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, (ख) गान्धी दर्शन से प्रभावित कविता, (ग) वैयक्तिक कविता, (घ) प्रगतिवादी कविता, (ङ.) प्रयोगवादी कविता । श्री विश्वम्भर 'मानव' ने उत्तर छायावाद काल में नये गीतिकाव्य, प्रगतिकाव्य एवं प्रयोगवादी तीनों का जन्म और विकास को स्वीकारा है । उत्तर छायावाद का तात्पर्य यहाँ पर केवल छायावाद के उत्तरार्द्ध भाग से है । 'दिनकर' ने इस काल की कविता का नामकरण छायावादोत्तर काल सुझाया है । ^२ हिन्दी साहित्य के प्रख्यात प्रगतिवादी आलोचक डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि, " निश्चित रूप से इस काल कवियों का 'तेवर' छायावादी कवियों से अलग है और बाद में आनेवाले प्रगतिवाद से भी इनका स्वर भिन्न दिखलाई पड़ता है । श्री विजयदेव नारायण साही ने इस काव्य प्रवृत्ति के लिए 'जवानी का काव्य' नाम सुझाया है तथा कुछ लोग इसे उत्तर छायावादी प्रवृत्ति अथवा छायावाद का परिशिष्ट भी कहते हैं, किन्तु इससे उस प्रवृत्ति की अपनी विशिष्टता का सही बोध नहीं होता । ^३ इस काल की कविताओं का नामकरण 'अनुभूतिपरक' भी किया जा सकता है क्योंकि इस काम के कवियों ने अपनी अनुभूति की सच्ची अभिव्यक्ति में साहस दिखाया है । इस तरह के साहस का अभाव था-छायावादी कविताओं में । वस्तुतः "छायावाद को अमूर्त और अमासल अनुभूतियों को मूर्त तथा मांसल रूप देते हुए, इस कविता ने प्रगतिवाद की भौतिक मान्यताओं के लिए

^१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों, (तृ.सं.), पृ. २५-११७

^२ 'दिनकर,' काव्य की भूमिका, पृ. ४६, ४७

^३ डॉ. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों, पृ. ६-७

पथ प्रशस्त किया । इस प्रकार यह प्रवृत्ति छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा है ।^१ इस कविता में मन तथा रोट्टी की अनुभूतिपरक समस्याओं का आकलन हुआ । इस काव्यधारा में आनेवाली कृतियों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करे तो ये प्रमुख प्रवृत्तियाँ उभरती हैं : १. व्यक्तिवाद, २. प्रेम, ३. निराशा, ४. विद्रोह, ५. सहजानुभूति, सहजभाषा ।^२

व्यक्तिवाद :

इस काल की कविताओं का मूलदर्शन व्यक्तिवाद है । इस कविता का कोई आस्तिक भावभूमि नहीं है, जो व्यक्तिवाद मान्य अवस्थाओं के प्रति सन्देह और विद्रोह को लेकर चला है । इसमें सूक्ष्म आध्यात्मिक आस्था के प्रति सदिह एवं नैतिक और सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह भी है । इसलिए आरम्भ में वह नाकारात्मक जीवन-दर्शन को लेकर आगे बढ़ा । 'बच्चन' तथा उस समय के अन्य कवियों की कविताओं में सन्देहवाद, भाग्यवाद और मानवतावाद की ओर प्रयाण करता है । नरेन्द्र, अंचल आदि कवि क्षयी रोमान्स के गीत को त्यागकर स्वस्थ मानवीय रोमान्स के गीत अलापने लगते हैं ।

प्रेम :

इस काल की कविताओं की मूल चेतना प्रेम है । यह प्रेम निश्चित रूप से

^१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ. ११

^२ डॉ. अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ. १५३

^३ वही, पृ. १५७

लौकिक है और लौकिक रूप में ही अभिव्यक्ति हुआ है । प्रेम के संयोग-वियोगजन्य हर्ष, विषाद,, उदासी, टूटन, असंतोष आदि का सघन स्वर इन कविताओं में मुखर हुआ है । प्रेम सांसारिक है, प्रत्यक्ष है, इसलिए उसका रूप विल्कुल स्पष्ट है । उस पर किसी प्रकार का आवरण नहीं है । 'बच्चन' के 'निशानिमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' यदि प्रेम के अवसाद के घनत्व को मुखर करते हैं तो 'मिलन यामिनी मिलन की मादकता और उमंग को । नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह की अधिकता है तो अन्य रचनाओं में प्रेयसी के सौन्दर्य , भोग और संयोग के उष्मा से भी मादक चित्र है । यही बात 'अंचल', 'नवीन', 'दिनकर', 'नेपाली' आदि की इस काव्यधारा में आनेवाली कृतियों के परिप्रेक्ष्य में भी कही जा सकती है । वास्तव में इस काव्यधारा की कविताओं का मूलस्वरूप प्रेम है ।^१

निराशा :

इस काल की रचनाओं का प्रमुख स्वर निराशा को लिए हुए है । देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था । साथ ही सामाजिक रूढ़ियों और आर्थिक विषमता के विकराल पाश में फंसा हुआ था । अकेला संवेदनशील कलाकार अपने को टूटता हुआ पा रहा था । इसलिए इन कवियों का समस्त परिवेश उदासी और निराशा को लिए हुए था , दृष्टि स्वच्छन्दतावादी थी । अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके न आध्यात्मिक आदर्शों से । जीवन दृष्टि के अभाव में वह क्रान्तिकारी अनुभव, निराशा, क्षण, मृत्यु की छाया, नियतिबोध से लिपटा हुआ था । कवि अपनी पीड़ा,

^१, डॉ. अजब सिंह, आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों पृ. १५४

असफलता, उदासी, निराशा को झेलता हुआ जीवन को विफल और आधारहीन समझने लगा-

मुझे लग रहा यह मेरा जीवन विफल महान्,
फटा-फटा सा मुझे लग रहा है निज अस्तित्व-वितान,
सभी ओर से जुट आई है असफलताएँ आज ।
कहाँ गया यह सृजन-परिश्रम ? कह नवल निर्माण ?”^१

“ यह कविता व्यक्ति के सुख-दुःख हर्ष-विषाद की कविता है, और व्यक्ति का हर्ष विषाद क्या है ? मन की जय और पराजय ! अस्मिता वृत्ति का परितोष सुख है और कुण्ठा दुःख । व्यक्ति की चेतना इसी हिडोले पर झूलती रहती है । वैयक्तिक कविता में मन को इसी जय और पराजय की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है ।”^२

विद्रोह :

इस धारा की प्रमुख कृतियों में विद्रोह का स्वर ध्वनित है । सामाजिक दायित्व और व्यक्तित्व भावनाओं के बीच द्वन्द्व का अंकन भी हुआ है । कविता में व्यक्ति, सत्ता, नियति, और अलौकिकता के प्रति व्यक्ति का विद्रोह मुखरित हुआ । विद्रोह की चेतना से आप्लवित इस अस्वीकृति में धर्म तथा ईश्वर को ललकारा गया-

“प्रार्थना मत कर, मत कर मतकर ।

युद्ध क्षेत्र में दिखला भुजा बल

रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,

१ बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ हम विषयी जनम के, पृ. २६०

२ डॉ. नगेन्द्र : आस्था के चरण, पृ. २६०

मनुज पराजय के स्मारक है यह मस्जिद गिरिजाघर ।^१

साथ ही साथ शोषकों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर भी इन कविताओं ने अंकित किया है । परन्तु इस धारा का समस्त विद्रोही स्वर स्वच्छन्दतावादी है, उसमें व्यक्तिगत भावावेश अधिक, सामाजिक दर्शन और सर्जनात्मक चिन्तन की सचेतनता कम । इसलिए यह विद्रोह स्वर भी वस्तुतः उनकी वैयक्तिकता में समाहित हो गया है ।

सहजानुभूति सहज भाषा :

इस धारा की कविताओं में अतिशय कोमल भाषा का प्रयोग मिलता है । भाषा सहज, सरल तथा अभिधा-प्रधान थी । कवि सीधे-सादे शब्दों, परिचित चित्रों और सहज कथन-भंगिमा के द्वारा अपनी बात बड़ी सफाई से कह देता है । भाषा जन-जीवन के निकट आती है, भाव तथा प्रेरणात्मक तथ्य और स्पष्ट हुए । भाषा की जीवन्तता में कथ्य की सहजता प्रकट हुई है -

“तुम्हें याद है क्या उस दिन की,
नये कोट के बटन होल में
हँसकर, प्रिये, लगा दी थी जब
वह गुलाब की लाल कली ?
फिर कुछ शरमा कर, साहस कर,
बोली थी तुम, इसको यो ही
खेल समझकर फेंक न देना,
है यह प्रेम-भेंट पहली ।”^२

१ बच्चन : एकान्त संगीत, पृ. १८

२ नरेन्द्र शर्मा : आधुनिक कवि, पृ. ४७

छायावादोत्तर कविता में छायावादी कविता के अशरीर सौन्दर्य और सूक्ष्म प्रेम-भावना का स्थान शारीरिक सौन्दर्य, मांसल, प्रेम भावना और भोग की भूख ने लिया । साहित्य की कसौटी पर इनका चाहे तो मूल्य हो पर नवयुवक पाठकों ने इन गीतों को जी खोलकर अपनाया । एक ओर इन कवियों को सरल भाषा और सहज अभिव्यक्ति के कारण लोकप्रियता मिली और दूसरी ओर उसकी एकमता के कारण अन्य कवियों को भी ऐसी भाषा-शैली अपनाने की प्रेरणा मिली ।

इसमें सदेह नहीं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश में जो आन्दोलन चल रहा था उसकी जड़े दिनों दिन गहरी बैठती जा रही थी और उसका प्रभाव भी तेजी से बढ़ता जा रहा था । इससे देश में जागरण आया उसके प्रकाश में लोगों को अपनी हीन दशा का कटु अनुभव हुआ, उसका कारण केवल विदेशी दासता को ही नहीं, सामाजिक पिछड़ेपन और आर्थिक शोषण को भी माना गया । इस बोध ने कविता के स्वर को बदल दिया । लेकिन यही बात जब एक संगठित आन्दोलन के द्वारा (प्रगतिवाद) रखी गयी तो एक खींचतान और कश-म-कश पैदा हुई । इस खींचतान के कई पहल थे-गोंधी बनाम मार्क्स, अतीत बनाम वर्तमान तथा अध्यात्म बनाम भौतिकता । यह कश-म-कश समाप्त होने के बजाय दिनोंदिन और उग्रतर एवं व्यापक होती जा रही है ।^१

भाषा और भाव को सहज बनाने का तथा कविता को जीवन के निकट लाने का जो महान कार्य 'दिनकर' और 'बच्चन' तथा भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र, अंचल, नेपाली, सुमन, सोहन लाल द्विवेदी, आरसी प्रसाद सिंह आदि अन्य सहकर्मियों ने आरम्भ

^१ सिद्धेश्वर सिंह : छायावादोत्तर काव्य, पृ. ५१

किया था वह वस्तुतः नवीन प्रवृत्ति का सूचक होकर भी अपनी काव्य परम्परा की सीमा में ही कविता की नई संभावनाओं और शक्तियों के अनुसंधान का प्रयत्न था । इस काव्य प्रवृत्ति का स्वतंत्र विकास किस रूप में होता, यह कहना कठिन है क्योंकि इस प्रवृत्ति के आरम्भ होते न होते बड़े जोर से प्रगतिवादी आन्दोलन शुरू हुआ जो साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रबल पोषक था । ”^१

‘दिनकर’, ‘बच्चन’ आदि कविता को प्रगतिवाद की ओर नहीं उस ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे जिस ओर प्रेमचन्द हिन्दी गद्य को ले गये थे । कविता की जो पुकार कवि ने सुनी उसमें छायावादी कल्पना-लोक का निषेध अत्यन्त स्पष्ट है-

आज न उड़ के नील कुंज में स्वप्न खोजने जाऊँगी,

आज चमेली में न चन्द्र किरणों से चित्र बनवाऊँगी । - दिनकर

भगवती चरण वर्मा की ‘भैंसागाड़ी’ और ‘ट्राम’ शीर्षक कविताओं से इस परिवर्तन का आभास मिलता है ।

इस परिवर्तन के मूल में तीव्र असन्तोष की भावना थी । इन कवियों के असन्तोष के निश्चित कारण थे- राजनीतिक और सामाजिक । इसलिए इन कवियों ने सप्तम स्वर में क्रान्ति का आह्वान दिया-

उठ भूषण की भाव-रंगिनी ! लेनिन के दिल की चिनगारी ।

युग-मदित यौवन की ज्वाला ! जाग-जाग, री क्रान्ति कुमारी ।

लाखों क्रौंच कराह रहे हैं , जाग आदि कवि की कल्याणी ।

फूट-फूट तू कवि-कण्ठों से बन व्यापक निज युग की वाणी ।

(कस्मै देवायः दिनकर) ^२

१ सिद्धेश्वर प्रसाद : छायावादोत्तर काव्य, पृ. ४८

२ वही, पृ. ५०

द्वितीय अध्याय

छायावादोत्तर गीति-धारा का विकास

छायावाद का सीमा-युग हिन्दी साहित्य के इतिहास में अधिकांशतः १९३५-३६ तक माना गया है । इसके पश्चात् कविता में पॉच -छः वर्ष तक छायावाद की ही रोमांतिकता में डूबी किन्तु छायावादी शाब्दिक-रागोली, काल्पनिक, दुरुहता और अतिशय आत्मपरक कविताओं की अस्पष्टता के नन्दन-निकुंज से मुक्त, गीतों का युग आता है । इस युग में छायावादी आदर्श भावना यथार्थोन्मुखी स्वरूप ग्रहण करने का प्रयत्न कर रही थी । इस छायावादोत्तर युग को वाणी वाणी दी- ' बच्चन, ' 'अंचल,' नरेन्द्र शर्मा,' 'दिनकर', शम्भूनाथ सिंह, आरसी प्रसाद सिंह, गोपाल सिंह 'नेपाली,' भगवती चरण वर्मा,' माखन लाल चतुर्वेदी, 'नवीन', सोहन लाल द्विवेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, उदय शंकर भट्ट, रमानाथ अवस्थी आदि गीतकारों ने ।

संस्कृत युग होने के कारण इस एक दशक में एक ही युग के भीतर अनेक नये युग जन्म ले रहे से प्रतीत होते हैं, जो मूल युग की केन्द्रीय धारणा को अपने भाषाजनित परिवर्तनों तथा नयी उपलब्धियों से और भी समृद्ध तथा सशक्त बनाने का प्रयत्न कर रहे थे ।^१ छायावादी स्वप्नलोक के शीशमहल से निकलकर कवियों की विद्रोही भावना यथार्थ से हटकर अनेक लघु स्रोतों में विभक्त हो नूतन प्रतिमाओं के स्वर में मुखर हो उठी । विशुद्ध प्रगीत काव्य की दृष्टि से यह युग अति महत्वपूर्ण है । छायावाद की परिणति वैयक्तिकता में होने की इस प्रक्रिया में कविता का माध्यम गीत या स्फुट रचनाएँ ही रही । तरुण कवियों की अति स्वच्छन्दतावादी भावनाएँ गीतों के रूप में

^१ सुमित्रानन्दन पंत, छायावाद : मुनर्मूल्यांकन, पृ. १०९-१०

फूट पड़ी जिनकी गीतमयी रिमझिम से हिन्दी काव्य का प्रांगण माटी की सोंधी गन्ध से महक उठा । पिछली दो दशाब्दियों में गीतों का प्रचार हिन्दी में एक साथ बढ़ जाने का यही कारण है ।^१ प्रगीत काव्य की दृष्टि से इस युग का अध्ययन तीन धाराओं में किया जा सकता है -

१. छायावादी युग की नयी भावनाओं से उदभूत वैयक्तिक कविता ।
२. क्रमागत राष्ट्रीय काव्यधारा ।
३. छायावादी काव्य परम्परा से प्रभावित नव्यतर प्रगीतकार ।

१. वैयक्तिक कविता :

छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में अनेक प्रकार के बौद्धिक तथा भौतिक प्रभावों के कारण व्यक्ति अपने प्रति अधिक जागरूक होने लगा - उसमें आत्म-चेतना और आत्मविश्वास की मात्रा बढ़ने लगी और वह दार्शनिक तथा प्राकृतिक प्रतीकों के आवरण त्याग साहसपूर्वक अपने हर्ष-विषाद को प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्ति करने लगा । इस प्रकार एक तरह की अतिशय आत्मपरक कविता का जन्म हुआ जिसका प्रभाव हिन्दी के नवयुवक कवियों पर संक्रामक होकर पड़ा ।^२

इस कविता का मूलदर्शन स्पष्टतया ही व्यक्तिवाद है और यह कविता व्यक्ति के सुख-दुःख की कविता है । इस वैयक्तिक काव्यधारा के प्रगीतकारों में सूक्ष्म और अतीन्द्रिय प्रेम की जगह मांसल और ऐन्द्रिक प्रेमवासना , आशा, आत्मनिष्ठा और आस्था की जगह निराशा, अनास्था और मृत्युपासना, प्रशस्त करुणाभाव की जगह पलायन, मौज

१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ. ७४-७५

२. वही, पृ. ६३

मस्ती और अतृप्ति का प्रधान्य है । व्यष्टि और समष्टि का अंतर्द्वन्द्व, व्यक्तिवादी और असामाजिक प्रवृत्तियों आदि की अतिरेकता है । छायावादी क्षयशील भावनाओं का प्राचर्य उनमें उपलब्ध है । इनकी रचनाओं में एक विलक्षण मस्ती और बहकाव है जो छायावादी निराशा के ही साथ कभी-कभी प्यार और यौवन की उदाम ओर मुक्त भावनाओं को गीत के माध्यम से व्यक्त करते प्रतीत होते हैं ।

अनुभूति की सीधी अभिव्यक्ति होने के कारण इस कविता में प्रायः सचेष्ट और अलंकृत कला नहीं है । इस कविता की कला में सहज गुण और ऋजुता का ही प्राधान्य है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसमें रूप और रंग का अभाव है । युवा मन की सृष्टि होने के कारण इस कविता में भी 'रंगीन स्वप्न-चित्रों' की कमी नहीं है । परन्तु फिर भी रंग-रूप के ये चित्र सरल हैं- इनकी कला सहज है, इनके अंकन में छायावाद के कवियों की सी नक्काशी, जड़ाव अथवा रंग और रेखाओं की बारीक कारीगरी नहीं है । इनकी सेवाएँ सरल और रंग स्वाभाविक है ।^१ वे कुछ ही कवियों में और उनकी भी थोड़ी ही रचनाओं में है ।^२ वैयक्तिक कविता के मूर्धन्य प्रगीतकार है- 'बच्चन,' 'नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचक,' भगवतीचरण वर्मा आदि ।

(१) हरिवंश राय 'बच्चन' :

'बच्चन' जी हिन्दी के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने खुद कविता नहीं लिखी है, वरन् कविता ने ही स्वयं जिन्हें लिखा है । बच्चन के अधिकांश काव्य पट में उनकी आत्मकथा के ही पन्ने बिखरे मिलेंगे । 'बच्चन' की कविता एकांत आत्मागत कविता

१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों, पृ. ७६

२ वही, पृ. ७८

है । प्रत्यक्षतः व्यक्तिगत जीवन की कविता होने के कारण बच्चन की कविता का मूलाधार है अनुभूति, और यही उसकी सबसे बड़ी और बहुत कुछ अंशों में एकमात्र शक्ति है । उनकी अनुभूति अधिक संस्कृत न होकर, काफी हद तक आदिम (प्रिमिटिव) है , परन्तु इसीलिए वह मौलिक और तत्त्वगत भी है ।^१ मूलतः उनकी कविता मस्ती, उमंग और उल्लास की कविता है । अनुभूतियों की तीव्रता उनका एक विशिष्ट गुण है ।

बच्चन छायावदोत्तर कविता के सर्वाधिक लोकप्रिय और आत्म सजग कवि है । मधुशाला उनकी अत्यधिक लोकप्रिय रचना है । पर क्रमशः वे जिन नये सोपानों की ओर बढ़ते गये हैं, उनमें उनकी व्यक्तिगतता मूल है । 'बच्चन' की कविता का आस्वाद उनके जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों से जुड़ा हुआ है । पर ऐसा होने पर जहाँ अधिकांश कवि डायरी लिखने बैठ जाते हैं, बच्चन कविता के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण सुरक्षा करने में सफल रह सके हैं । बच्चन ने मधुशाला के माध्यमसे एक नयी सामासिक संस्कृति का जन्म देना चाहा है जो आधुनिक दुनियाँ का वास्तविक रूप ग्रहण कर सके । परवर्ती रचनाओं में वे अनुभवों के अन्य व्यक्तिगत प्रसंगों में उतरते गये हैं । निशा-निमंत्रण और एकांत-संगीत और मिलन-यामिनी, सतरंगिनी आदि ऐसी ही काव्य-स्थितियों हैं जहाँ वे अपने सामाजिक मन और व्यक्तिगत मन से बहुत काव्यात्मक ढंग से उलझते हुए दिखाई देते हैं । अनुभवों की जिस व्यक्तिगतता का उल्लेख ऊपर किया गया है , बच्चन उसके आदर्श उदाहरण हैं । वास्तव में उनकी कविता कल्पना के पंख खोलकर उड़ने के बजाय जमीन पर नंगे पैर चलना पसन्द करती है । इसलिए उसमें हमारे

^१ डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों, पृ. ८८-८९

निकट आ जाने की सहज क्षमता है। 'साथी सो न कर कुछ बात', 'दिन जल्दी-जल्दी ढलता है', 'अब मत मेरा निर्माण करो,' आज मुझसे दूर दुनियाँ,' आदि कितने ही ऐसे गीत हैं। जो हमारी संवेदना को झनझनाहट से भर देते हैं। बच्चन के इन गीतों ने छायावादी गीतों के कुहासेपन से अपने आपको बहुत दूर रखा है। इसका कारण कविता की भाषा की तरोताजा होना भी है। वे जीवित भाषा के नहीं ताजी भाषा के कवि हैं। इसलिए उनका प्रभाव बहुत व्यापक है।

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'निशा-निमंत्रण' के अनेक तथा 'एकान्त संगीत' के कुछ गीतों को रागात्मक अन्विति हिन्दी-गीतिकाव्य के लिए आदर्श है। और 'निशा-निमंत्रण' में तो यह अन्विति पृथक्-पृथक् गीतों में ही नहीं मिलती उसकी सम्पूर्ण गीत माला में ही एक प्रबल रागात्मक अन्विति वर्तमान है, और यह ठीक ही कहा गया है कि 'निशा निमन्त्रण' स्फुट गीतों का संकलन न होकर मानव जीवन की करुणा का ही महागीत है।^१ आचार्य वाजपेयी के अनुसार-अनुभूति के क्षेत्र में 'बच्चन' की यह गहराई अत्यधिक वैयक्तिक है। इसी दृष्टि से 'बच्चन' की वास्तविक कविता 'एकान्त संगीत' और 'निशा-निमन्त्रण' में ही मिलती है।

बच्चन की प्रतिभा समासतः गीतात्मक है। वे मुख्यतः गीतकार हैं, गीतों के सृजन के लिए ही वे गौरवास्पद हैं। मैथिली में जो विद्यापति के गीतों का स्थान है, खड़ी बोली में बच्चन के गीत उतने ही लोकप्रिय हैं। अतः आधुनिक खड़ी बोली में बच्चन को गीतों का सम्राट कहना अत्युक्ति न होगी।^२ बच्चन का कवि भाव प्रवण

१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों, पृ. ९३-९४

२ बच्चन : एक युगान्तर, पृ. १२-१३

है । उसके पास विषय-वस्तु अधिक नहीं, किन्तु माप-सम्पत्ति अतुल है । भावपूर्णता गीतों का प्राण है । इसी से उसके गीतों में दीप्ति है, कान्ति है और एक अनूठा गुरुत्वाकर्षण है । वह भावों का धनी है, गीतों का राजा है । गीतिकाव्य के लिए आवश्यक सभी गुण संक्षिप्तता, स्वर-माधुर्य, सरलता, सहजता, भाव-विभूति, अध्यान्तरिकता आदि उनकी रचनाओं में भरपूर मात्रा में विद्यमान है ।

काव्य-दिशा के ग्रहण और काव्य-रूपों के निर्माण में कवि से रुचि का योगदान तो रहता ही है पर इससे कहीं अधिक उसके वातावरण का योग रहता है । बच्चन मधुशाला में एक नया वातावरण लेकर आते हैं । कविता की एक नयी जमीन हमारे सामने उद्घाटित होती है । प्रणय-पलिका, 'मिलन-यामिनी, सतरंगिनी, निशा-निमंत्रण और एकान्त संगीत में उनकी कविता हमारे सामान्य आवेगों को मूर्त करती हुई दिखाई देती है । किन्तु जैसे-जैसे कवि वय की दृष्टि से प्रौढ़ होता गया उसके विचार उसकी सहज कविताई को मण्डित करते गये । अब उनकी कविताएँ हमें भोक्ता के रूप में ग्रहण नहीं करती बल्कि हम उनके एक सहविचारक के रूप में बच रहते हैं । अन्तिम संकलनों में भी ऐसी कविताएँ हैं जो बच्चन के पहले वाले रूप का ध्यान दिलाती रहती है पर वह जीवन की अनगढ़ और व्यस्त परिस्थितियों में बहुत कुछ दब सा गया है, मरा कदापि नहीं है ।

उठ गया लो पाव मेरा

छूट गया जो ठाव मेरा ।

अलविदा, ऐ साथ वालो,

और मेरा पथ-डोरा,

तुम न चाहोमैं न चाहूँ

कौन भाग्य विधान रोके ।

कौन यह तुफान रोके ।^१

बच्चन की कविता की सबसे बड़ी पूंजी है 'अनुभूति', उसके क्षीण होते ही उनकी कविता नंगी हो जाती है । क्योंकि अनुभूति की रिक्तता को कल्पना के फूलों और चिन्तन की धूपछांही जाली से ढकने की कला से वे अनभिज्ञ है । और चूँकि अनुभूति के क्षण अति विरक्त होते हैं इसलिए बच्चन की रचनाओं में महान कविताओं की संख्या बहुत कम है । अपने सर्वश्रेष्ठ गीतों के आधार पर बच्चन का स्थान हमारी पीढ़ी के कवियों में बहुत ऊँचा है , यद्यपि इसमें भी सन्देह नहीं कि गुण और परिणाम दोनों में बच्चन से अधिक खोखली कविताएँ भी आज के किसी समर्थ कवि ने नहीं लिखी ।^२

भाव-सजल मेघ के समान अपने गीतों के मधुवर्षण द्वारा जो उन्मत्त कर देनेवाला मन्दिर-आसव बच्चन ने , हिन्दी जगत् को दिया है, वह अपने प्रभाव में अभूतपूर्व है; चिर यौवन और अक्षय भावराशि का वरदान लिए इस कवि ने, जीवन-संघर्ष की कुंभीपांक ज्वाला के बीच खड़े होकर जो तप्त-कंचन से खरे गीत गाये हैं उनमें प्रत्येक प्राणी के हृदय का सागर-मन्थन ही स्वर पा गया है । गीतिकार बच्चन की प्रतिभा का परिमाण इतना अधिक है कि समय के पृष्ठ पर से वह मिट नहीं सकेंगे, इतिहास की क्रूर यवनिका उनकी ज्योति का मलिन करने में असमर्थ रहेगी ।

१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख प्रवृत्तियों, पृ. ९६

२ 'सतरंगिनी,' पृ. ११४

(२) रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' :

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' छायावादोत्तर गीतिधारा के दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं । उनकी कविताओं में यौवन की आग और आंधी दोनों हैं । कहने को तो वे रूप पिपासा और प्रणयाकांक्षा के कवि हैं पर काव्य की स्थापित और आगत परम्पराओं के संदर्भ में उनकी प्रगल्भता अत्यधिक तीक्ष्ण है । ' नारी ' के प्रति तो भावनात्मक दृष्टिकोण छायावादी कविता में उदात्तता की सीमा तक पहुँचा हुआ था , अंचल की कविता में उसे व्यक्ति के ठोस यथार्थपूर्ण दृष्टि से जोड़ दिया । शाश्वत पुरुषत्व और शाश्वत नारीत्व का समानान्तर यथार्थ ही अंचल की मूल पहचान है । डॉ. शिवकुमार मिश्र का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है कि यौवन का उद्दाम और प्रबलतम वेग उनके अधिकांश काव्य में आद्यन्त देख पड़ता है और यही उनके ऐन्द्रिय तथा स्थूल प्रेम और तज्जन्य अनुभूतियों का वास्तविक परिचालन भी करता है ।

अंचल की कविता में स्वाभाविकता खूब है । उनकी भाषा में कोमलता और माधुर्य का इतना सुन्दर सम्मिलन है कि हर जगह मस्ती और मादकता की छाप से कविता में एक नवीन सौन्दर्य दिखाई देता है । कृत्रिमता जितनी कम 'अंचल' में है, उतनी कम शायद ही दूसरे हिन्दी कवि में मिले । जिस प्रकार वृक्ष में पत्तियाँ अपने आप आती रहती हैं उसी प्रकार स्वाभाविक गति से 'अंचल' की कविता भी स्वतः फूटती है । जो भाव दिल में जैसे उठे, वैसे के वैसे ही कविता में भी आ गये हैं । वही उनकी सच्चाई है , ईमानदारी है, तारीफ है ।

'मधूलिका' (१९३८) तथा ' अपराजिता' इनकी प्रारम्भिक कृतियाँ हैं । इन गीतों में कवि के वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है । यहाँ वे उन्मुक्त प्रेम के गायक तथा सहज मानवीय सौन्दर्य के चितेरे हैं । 'करील' (१९४२) तथा

‘किरण-बोला’ (१९४१) में ‘अंचल’ प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख हुए । इन कृतियों में कवि ने समाज में परिव्याप्त विषमताओं का अंकन किया है ।

कुछ दिनों तक अंचल प्रगतिवादी आन्दोलन के वातावरण में भी सांस लेते रहे है । शरीरेतर यथार्थ को कविता में स्थान देते हुए अंचल की परेशानी उन कविताओं में आंकी जा सकती है जो प्रगतिवाद के नाम लिखी गयी । उनमें कवि का ‘मन’ कहीं नहीं है । बस, युगीन दबाव के कारण वह गिनी-चुनी मुद्राओं वाली प्रगतिशीलता में शामिल हो सका है ।

इस दृष्टि से अंचल का व्यक्तित्व इकहरा है । उसमें अन्यान्य भावों और विषयों को समाहित करने की उत्कण्ठा नहीं है । वह कमनीय और सुन्दर का कवि है । उसकी कविता ऐन्द्रिक आकर्षणों की कविता है । जहाँ कहीं वह इस आग से तटस्थ है उसकी कविता के स्वर मन्द पड़ गये हैं ।

(३) नरेन्द्र शर्मा :

नरेन्द्र शर्मा छायावादोत्तर गीतिधारा के तीसरे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । बच्चन की मानसिक अस्थिरता और अंचल की रूप-पिपासा नरेन्द्र शर्मा के गीतों में उपलब्ध नहीं है । नरेन्द्र शर्मा अभिजात संकोच वाले कवि हैं । इसलिए उनमें न तो बच्चन की सी उमंग की अभिव्यक्ति है और न ही अंचल की सी उद्दामता ही । वे विरहानुभूति की शालीनता के कवि हैं । समय और व्यवस्था के दबावों को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेने के कारण नरेन्द्र शर्मा की कविता न तो कहीं विद्रोह व्यक्त करती है, न ही अपनी उत्कण्ठा जाहिर करती है । वह तो परिस्थितियों के विवश स्वीकार की कविता है । ये परिस्थितियाँ प्रेमजन्य है । इनके आगे और पीछे कौन सा प्रतिबन्ध कार्य कर रहा है या कौन सी बाधाएँ सक्रिय हैं, इसका उल्लेख कवि की कविता में नहीं है ।

इसलिए विवशता मूल और निष्पन्द है । यही वह 'क्षयी रोमान्स' है जो रोने या छटपटाने के अलावा ओर कुछ नहीं कर सकता । पर जहाँ तक इन स्थितियों के सहयोग से सृजी गयी कविता का सवाल है, वह नितान्त विश्वासनीय और संभ्रान्त मध्यवर्गीय कुण्ठा को राहत देनेवाली है । 'प्रेम' शब्द स्वयं ही मध्यवर्ग का ऐसा कल्पलोक है जहाँ हर व्यक्ति कुछ देर के लिए आकर विलगता ही है । वह अपनी असफलता या अधूरेपन में उन लोगों के लिए काफी दिलचस्प बना रहता है जो असफल या वियुक्त प्रेमी है ।

नरेन्द्र शर्मा की कविताएँ हमारे सूने ओर उदास मनोलोक से जुड़ी हुई है । इसलिए वे बेहद ठण्डी है । पर यह 'ठण्डापन' ही उनकी अभिजात / कुलीनता की विशेषता है । बाद में तो वे अपनी कविताओं से सामाजिक परिवर्तन जैसा गम्भीर दायित्व भी सम्पादित करने लगे हैं । उनके जीवन में एक नया उद्बोधन उभरने लगा है -

इन्द्र धनु नभ बीच खिलकर, शुभ हो सतरंग मिलकर
गगन में छा जाये विद्युज्ज्योति के उद्यम शर
हंसमाला चल ! बुलाता है तुझे फिर मानसर
शान्ति की सितपंख भाषा ! बन जगत की नई आशा
उड़ निराशा के गगन में हंसमाला तू निडर

(हंसमाला)

विवशता और निराशा से आस्था और अनुराग की ओर आना तथा धीरे-धीरे कविता को अधिक सजग और मुस्तैद करना उनकी काव्य कला की अनिवार्य प्रक्रिया है । उद्गार मूलक कविता यौवन की बाढ़ के गुजर जाने पर शरदाकाश की तरह

गम्भीर और व्यापक हो गयी है । वो तो बच्चन की तरह वह मैदानी नदी की तरह चारों ओर पौटी नहीं है पर आधुनिक जीवन के शाश्वत और गम्भीर उद्देश्यों से जुड़ने का प्रयत्न वह अवश्य करती रही है ।

नरेन्द्र शर्मा जिस काव्य-भाषा को स्वीकार करते हैं। वह पहले से ही उनके वातावरण में विद्यमान है । कहीं-कहीं वे उससे सांकेतिक कार्य भी कराते हैं । ' मैं मरघट का दीपक तब हूँ।' जैसे गीतों में 'रंगीन चिताएँ, ' दृग-जल की मादा' ' पत्र-पत्र पर प्रेत नाचते या लिपटे हुए जड़ों में अजगर' वाले बिम्ब कविता की बुनावट को अधिक सघन और उदग्र कर देते हैं । नरेन्द्र शर्मा छायावादोत्तर गीतिधारा (लिरिक) के नैराश्य को घनीभूत करनेवाले कवियों में सबसे आगे हैं ।

उपसंहार :

छायावादोत्तर वैयक्तिक-कविता के रचयिताओं की पूरी पीढ़ी का गीतिशिल्प अपनी सहज, सरल अभिव्यक्ति और लालसादीप्त प्रखर आत्मानुभूति के कारण समस्त हिन्दी काव्य में अपूर्ण है । उसमें कला वैभव और कल्पना का बंकिम विलास चाहे न हो किन्तु निरलंकारता और सरलता का जो गुण इस गीतिकाव्य में है वह सर्वदा विलक्षण है, इस आयास- रहित शिल्प का सौन्दर्य अनूठा है, जहाँ अनुभूति ही अभिव्यक्ति बन गई है ।

२. राष्ट्रीय काव्यधारा :

आधुनिक युग में हिन्दी काव्य के क्षेत्र में जो प्रवृत्तियाँ विकासशील रही हैं उनमें राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति भी एक है । छायावादी प्रगीत काव्य के साथ राष्ट्रीय कविताओं की एक स्वतन्त्र धारा भी प्रवाहमान भी जिसमें ओजस्वी स्वरों में देश-भक्तिपूर्ण प्रगीतों

का सृजन किया गया । डॉ. नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति को 'राष्ट्रीय - सांस्कृतिक' काव्यधारा का नाम दिया है ।^१ इन कविताओं की मूल-भावना है देश भक्ति । इन कविताओं का पृष्ठाधार अत्यन्त विस्तृत है । किन्तु इस वर्ग की प्रत्येक रचना सच्ची देश-भक्ति से अनुप्राणित नहीं है । अतः कुछ कवियों की भी केवल कुछ ही रचनाओं को छोड़कर इन कविताओं में स्थायित्व गुण का अभाव है । इनमें सामयिकता और वास्तविकता अधिक है, कल्पना की उड़ान कम । इनमें शक्ति और स्फूर्ति तो है परन्तु कवित्व और कला बहुत कम है ।

इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं- माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' , सोहन लाल द्विवेदी आदि जिन्होंने हृदय में देश-प्रेम की दीपशिखा जलाकर पतंगे की तरह अपनी सारी प्रतिभा और कविता उसी ज्योति पर न्यूँछावर कर दी है । यँ इनके काव्य जीवन के दूसरे आयाम भी रहे हैं पर मूल-प्रेरणा देश-भक्ति की ही रही है ।

(१) माखन लाल चतुर्वेदी :

प्रतिभा शब्द हिन्दी की जिस कवित्वमयी विभूति को विश्लेषित कर स्वयं गौरवान्वित हो - वह है माखनलाल चतुर्वेदी ।^२ इनके भीतर के कवि, योद्धा, विचारक, प्रेमी और भक्त सबके सब एक ही लक्ष्य की ओर चलते हैं । और साधन की आग में पिघल जाते हैं । वीर और श्रृंगार, आग और पानी जैसी विरोधी प्रवृत्तियों को

१ डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों, पृ. १९

२ प्रभाकर माचवे : व्यक्ति और वाङ्मय, पृ. ८६

एक सूत्र में चतुर्वेदी जी कैसे बँधे रहे- यह आश्चर्य है । उनके बहुमुखी व्यक्तित्व में तीन धाराएँ एक साथ संगमवती है- देश प्रेम, और प्रकृति । ' उनकी राष्ट्रीय कविताओं में कला है, भावनाएँ हैं, जोश है और कुछ ऐसा है जो सदा नवीन रहने वाला है । इनके काव्य को समझने के लिए हमें एक ही सूत्र को पकड़ना होगा, वह है उनकी राष्ट्रीय भावना । आपकी प्रमुख काव्य कृतियों निम्नलिखित हैं- ' हिमकिरीटनी' (१९४३), 'हिमतरंगिनी' (१९४९), 'माता', (१९५१), 'युगचरण' (१९५६), 'समर्पण' (१९५५६), वेणु लो गुंजे धरा (१९६०), मरण ज्वार', (१९६३), 'बीजुरी काजर ओंज रही' (१९६४), आदि । काव्य-विकास की दृष्टि से हम उनकी रचनाएँ दो श्रेणी में रख सकते हैं । प्रारम्भिक काव्य अर्थात् १९२० ई. से पहले की रचनाएँ और प्रौढ़ काव्य अर्थात् १९२० ई. से आज तक की आज तक की काव्य-सृष्टि । राष्ट्रीयता उनके काव्य का कलेवर है तो भक्ति और रहस्यात्मक प्रेम उनकी रचनाओं की आत्मा ।

माचनलाल जी निबन्ध काव्यस के प्रणेता हैं और उसके दोनों रूप मुक्तक तथा गीतिकाव्य उनमें मिलते हैं । गीतिकाव्य के प्रणयन में इन्हें विशेष सफलता मिली है । इनके प्रगीतों में अन्तः पक्ष की दृष्टि से राष्ट्रीय, प्रेम, रहस्यपरक, विचारात्मक, प्रकृति, व्यंग्य, विनय और आत्मपरक प्रगीत मिलते हैं । काव्य-रूप की दृष्टि से ये आरम्भ से ही साहित्यिक गीतिकार के रूप में अवतरित हुए थे और अन्त तक इसी शैली का उत्कर्ष उनकी रचनाओं में मिलता है । अपने प्रौढ़ काल में आपने कुछ गजलें तथा वेणु लो गुंजे धरा ' में कुछ द्विपदियों और चतुष्पदियों भी मिलती हैं । कतिपय शोक -गीतों के अतिरिक्त-साहित्यिक गीत और सम्बोध गीति ही इनके प्रमुख माध्यम रहे ।

माखनलाल जी मुख्यतः राष्ट्रीयता के कवि हैं , यद्यपि उनमें छायावादी प्रवृत्तियों भी पाई जाती हैं । उनकी भाषा का स्वरूप व्यवस्थित न होते हुए भी उसकी अद्भुत मिठास आलोचकों ने स्वीकार की है । उनकी भाषा में संस्कृत का पाण्डित्य नहीं है और न उर्दू का आधिक्य है । दैनिक जीवन की बोली में कही हुई उनकी बातें मन को प्रसन्न करती हैं । शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में माखन लाल जी की भाषा 'साहित्यिक हिन्दुस्तानी है' जिसमें अधिकांश शब्द ठेठ खड़ी बोली के हैं फिर उर्दू, फारसी के शब्दों का क्रम आता है । तत्पश्चात् क्रमशः देशज, संस्कृत, अंग्रेजी और स्वयं के गढ़े हुए शब्दों का स्थान आता है । कहीं-कहीं इन विविध शब्द-समूहों को चतुर्वेदी जी ने अपनी शैली में ऐसा पचा लिया है कि वे अलग से मिलाए हुए नहीं जान पड़ते । चतुर्वेदी जी भाषा-विन्यास में व्याकरण के अनुगामी नहीं हैं । प्रभाकर माचवे के शब्दों में उनकी भाषा में कबीर जैसा अनसंवरा अटपटापन है ।

(२) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' :

'नवीन ' जी - 'साहित्य-जगत के कई पहलों वाले हीरा हैं । ये भावकवि हैं । बरसाती नदी की वेगवती धारा के समान सदैव असाधारण गति से ही कूलों कगारों को ढहाते हुए चले जाते हैं, जिधर प्रवाह ले गया उधर ही चल दिया । इनकी कविता अक्षय यौवना है ।^१ वास्तव में नवीन तरुणाई के कवि हैं । वे राष्ट्रीय वीर काव्य के प्रणेताओं

१ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ. ६६८

में मुख्य हैं । इनके भीतर शक्ति का 'डायनामाइट' है जो इनके राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न गीतों को सजीव और प्रलयकारी बनाता है ।

पैंतालीस वर्ष (१९१५-१९६०) की इनकी काव्य साधना में केवल सात कृतियों प्रकाशित हैं और विपुल काव्य साहित्य अप्रकाशित ही पड़ा है । इनकी अनगिनत रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी संचिकाओं में दबी पड़ी है । 'कुंकुम' (१९३९) का रचनाकाल संभवतः १९२१-३२ रहा है । ^१ सन् १९५१ ई. में -रश्मि-रेखा,' और 'अपलक', १९५२ ई. में 'क्वासि' तथा १९५५ ई.में 'विनोबा -स्तवन' प्रकाशित हुए । 'उर्मिला' (१९५७) इनका महाकाव्य है और 'प्राणार्पण' खण्ड काव्य ।

'नवीन' जी की अप्रकाशित काव्य-कृतियों हैं- 'सिरजन की ललकारे' या नूपुर के स्वन', 'नवीन दोहावली,' 'यौवना मदिरा' या 'पावस पीड़ा ,' प्रलयंकर,' 'स्मरण दीप,' एवं 'मृत्यु-धाम' या 'श्रृजना शौंश' । नवीन जी अपने आपको मूलतः गीतकार ही मानते थे , प्रबन्धकार नहीं । वे अपनी प्रकृति एवं व्यक्तित्व से गीतकार ही थे । गीतों में उनका हृदय पिघलकर बह निकला है । नवीन जी में तीन प्रकार की गीति शैली मिलती है-पद शैली, प्रणीत शैली, लोक गीत शैली ।

संगीत कवि के तन्तु-तन्तु में परिव्याप्त था । वह उसे संस्कार रूप में ही प्राप्त हुआ था । इसीलिए कवि ने अपनी अनेक रचनओं को शास्त्रीय आधार पर संगीतबद्ध करने का प्रयास किया है । उनके गीतों में आद्यतं भावात्मकता ही गतिशील रहती है । उनके गीतों में रागात्मक आवेश तथा मनोवेगों की तीव्रता का प्राचुर्य है । आत्माभिव्यंजना और अनुभूति की पूर्णता के साथ उनकी गीति शैली संगीत के मार्दव

^१ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्ति एवं काव्य, पृ. १४९

से आपूरित है । उनके प्रगीत शिल्प में संगीत की अन्तः सलिला को प्रवहमान देखा जा सकता है । करुणा और रति की गाथा को मथनेवाला उनका गीतिकाव्य भावपक्ष की दृष्टि से जितना प्रखर व समृद्ध है, उतना कला पक्ष की दृष्टि से नहीं । भावान्वित एवं गीत के आरम्भ, मध्य एवं अन्त की स्थिति के सम्यक् सन्तुलन में वे अंशतः ही सफल हुए हैं । उनके गीत संवेदनात्मक तथा संक्षिप्त हैं ।

अपने गीतों के बारे में स्वयं नवीन जी ने 'अपलक' की भूमिका में लिखा है- अपने सम्बन्ध में निःसंकोच कह सकता हूँ कि मुझमें साधना का अभाव है । साहित्य साधना के लिए माता सरस्वती की उपासना के लिए जिस निष्ठा की आवश्यकता होती है वह मुझमें नहीं रही । मेरे पास न शब्द है, न कला-कौशल है, न अध्ययन गाम्भीर्य है, न स्वेद सामर्थ्य । गीतों के भावपक्ष के अनुकूल उनकी रचनाओं का कलापक्ष भी सहज और स्वाभाविक है । अपनी भाषा, अलंकार, छन्द, किसी भी क्षेत्र में सजग नहीं रहे । इन सभी क्षेत्रों में उनकी मस्ती और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति ही दिखाई देती है ।

'नवीन' जी की प्रसिद्धि उन विप्लवकारी गीतों के कारण है जिनमें क्रान्ति की चिनगारियाँ हैं, उद्दीप्त यौवन की पुकार है, सर्वनाश और महाप्रलय का महागर्जन है । प्रलयकारी मेघ-गर्जन का प्रचण्ड घोष और प्रेम की विद्युत्पीर इस कवि के लिए उपयुक्त उपमान है, जिसने अपने हृदय के वर्षा-जल से गीतों की भावभरी गागरों को रस से छलका दिया । लोक गीतों की पगडण्डियों और पनघटों की लोकधुनों से इनके गीत मुखरित हैं जिन्होंने छायावादोत्तर कालीन गीतों की दिशा को प्रशस्त किया है ।

(३) रामधारी सिंह 'दिनकर' :

'दिनकर' का उपनाम स्वयं में कवि की सुन्दर व्याख्या है । यह शब्द स्वयं ही कवि के काव्य का परिचायक है । 'दिनकर' की अनुभूति, भाव, अभिव्यक्ति आदि सब मध्याह्न के प्रखर सूर्याताप का तेज धारण किये हैं । दिनकर की काव्य चेतना हिन्दी काव्य की विविध प्रवृत्तियों की लहरों के साथ न उठी न गिरी । उसका एक मूल उत्स रहा है । हिन्दी के विविध वादों से उलग उनकी एक स्वतंत्र सत्ता । यहाँ तक कि उनकी राष्ट्रीय कविताएँ भी अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों के रचनाओं से भिन्न है ।

दिनकर की काव्य-कृतियों में 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेनी', 'बापू', तथा 'रसवन्ती' गीतिकाव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । दिनकर की गीतियों को यदि विषय के अनुसार बाटा जाय तो मोटे रूप में दो विभाग संभव है- ओज गीत और प्रेमगीत । यदि आधार की दृष्टि से बाटा जाय तो छोटे बड़े गीतों का भेद मिलेगा । दिनकर की राष्ट्रीय प्रगीतों में क्रान्ति की ब्रज हुंकार, मध्याह्न सूर्य की प्रखरता और तेजस्विता है । वे 'समर-भूमि की तिमिर ज्योति के चरण' और 'वैताली' कवि हैं । 'नील कुसुम' में उनके सामाजिक और प्रगतिशील प्रगीतों का संकलन है । दिनकर की गीतियों आत्माभिव्यंजना अनुभूति वैशिष्ट्य और भावैक्य की दृष्टि से सफल है । इनकी मुक्तक रचनाएँ भावावेश, अध्यान्तरिकता, संगीतात्मकता एवं अनुभूतियों के सत्य के कारण गीतिकाव्य की कोटि में आती है । द्वन्द्वगीत में कवि 'उमरखय्याम से प्रभावित है । दिनकर की गतियों में भीषण गर्जन भी है और बांसुरी की अपूर्व मधुरता भी ।

'दिनकर' में आरम्भ से ही अपने को अपने परिवेश में जोड़ने की तड़प दिखाई पड़ती है, इसलिए उनमें सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है- दिनकर

की सबसे बड़ी विशेषता है- अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता । कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है । कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं समताओं आदि के तो रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नये जीवन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है । दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबारकर चिन्तन, परीक्षण, तथा आत्मालोचन का स्वरूप देने का प्रयत्न किया, साथ ही राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा । यह विकास तभी सम्भव है जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो । 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तुस्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख साम्राज्य की स्थापना की कामना का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

“ ऊपर सब कुछ शून्य शून्य है,

कुछ भी नहीं गगन में ।

धर्मराज ! जो कुछ है, वह है,

मिट्टी में, जीवन में । ”^१

१ 'दिनकर' कुरुक्षेत्र, (बीसवों सं.) पृ. ११९

डॉ. अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों,, पृ. १५९ से उद्धृत ।

(४) सोहन लाल द्विवेदी :

राष्ट्रीय धारा के प्रसिद्ध कवि द्विवेदी जी के प्राण राष्ट्र की व्यथा से सजल हो 'भैरवी' के स्वरों में उद्बुद्ध हो उठे हैं । उन्होंने अपनी कविता को राष्ट्र की जागरण - वेला की भैरवी और अपनी भक्तिभावना को 'पूजागीत' बनाया है। खादी गीत, ग्राम-गीत, प्रयाण-गीत और अभियानगीत , किसानों और मजदूरों के उद्बोधनों तथा 'ढांडी' अभियान और 'त्रिपुरी' समारोह के पदाघातों से उनकी कविता के चरण मुखरित और निनादित है। उनमें भारतमाता की हथकड़ियों, बेड़ियों की झनझनाहट है, अभियान करती हुई विजय-वाहिनियों के शंख-विषाणों की गर्जना, बलिदानियों और शहीदों की पूजा के अक्षत हैं ।

भैरवी (१९४१) , 'वासवदत्ता' (१९४२), 'पूजागीत' (१९४५), 'विषपान' (१९४५), युगाधार (१९४४), वासन्ती (१९४४), 'चित्रा,' (१९४४), इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं । 'सेवाग्राम' उनकी राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है। सोहनलाल जी केवल राष्ट्रीय कवि ही नहीं हैं, वे राष्ट्रीय संस्कृति के भी उद्गाता हैं । राष्ट्रीय जीवन की धड़कनों के संस्पर्श से सोहनलाल जी की कविता जीवनमयी हो गयी है जो पाठकों के हृदय को छूती है । देश की धरती, आकाश, और वन-पर्वतों का सौरभ द्विवेदी जी की कविता को अमरता की संजीवनी प्रदान करता है ।

उपसंहार :

माखन लाल चतुर्वेदी, 'नवीन', दिनकर, 'सोहन लाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी आदि के अतिरिक्त राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के संवर्धन-परिवर्द्धन में केदारनाथ मिश्र, 'प्रभात,' जगन्नाथ प्रसाद, 'मितिन्द,'

श्यामनारायण पाण्डेय आदि कवियों का योगदान भी महत्वपूर्ण है । राष्ट्रीय काव्यधरा के पल्लवन-पोषण में इनके सहयोग द्वारा एक गहराई, गम्भीरता और पूर्णता आ गई । यह ठीक है कि छायावादी गीति-शिल्प की भव्य-गरिमा और ताजमहल की सी कलाकारिता की तुलना में इनका प्रगीत शिल्प सर्वथा नगण्य है तथापि गीति की पगडंडियों पर चलकर इन क्रान्तिकारी पुरोधाओं ने गीत को सरल अभिव्यक्ति का जो गैरिक-वसन पहनाया है, उसे गीत का मधुमय कलेवर तापस की प्रशान्त मुखमुद्रा सदृश ही ज्योतिर्मय हो उठा है ।

(३) छायावादी काव्य-परम्परा से प्रभावित नव्यतर प्रगीतकार :

आधुनिक गीतिकाव्य की रस-स्रोतस्विनी ने प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के क्लासिक-काव्य के महोदधि में पहुँचकर अपने चरम-गन्तव्य को प्राप्त किया । इस प्रतिभा-शिखर के स्पर्श के पश्चात् छायावाद के क्षेत्र में अन्य सुदूर क्षितिजों अथवा आयामों की मौलिक उपलब्धि की प्रत्येक सम्भावना का द्वार रुद्ध हो गया । अतएव गीतिधारा ने अभिनव मोड़ लिया । इस गीत-मंदाकिनी को काव्यधारा पर अवतरित करनेवाले भगीरथ थे- 'बच्चन' जिन्होंने कविता परी को स्वप्नों के इन्द्रनील शृंगों से उतारकर माटी से उसका शृंगार किया तथा उस भुवनमोहिनी की दिव्य छटा को अपने हृदय की धड़कनें अथवा उष्मा देकर मानवी का आवेगयुक्त, भावस्थल, प्यार दिया ।

इस अतीन्द्रिय अथवा भोगवादी दृष्टिकोण से पृथक् छायावादोत्तर काल के अवसान पर नई चेतना के सूर्योदय के स्वागतोपलक्ष में नव्यतर गीतिकारों की जिस पीढ़ी ने अपने नन्हें चंचु-पुटों की गीतमयी चहचहाहट से घर, द्वार, आँगन को पूर दिया, वह

ऐतिहासिक दृष्टि से छायावादीपरम्परा की ही नव्यतम् कड़ी थी ।^१ यूँ अपने क्षेत्र में नई अभिव्यंजना , नये विचार, नये भाव, नये विषय लेने के बावजूद छायावादीपरम्परा के वैभवपूर्ण दाय से ये गीतिकार मुक्त नहीं हो सके ।

किसी भी युग में काम करनेवाले अनेक रुचियों के कवि होते हैं । किन्तु इससे भिन्न रुचि वाले कवियों का महत्व कम नहीं हो जाता । नव्यतर प्रगीतकारों का सही रूप पाठकों के समक्ष नहीं आ सका इसमें दलगत भावना का बहुत बड़ा हाथ है । प्रगतिवादी आलोचकों और प्रयोगवादी कवियों के प्रचार के कारण आज का पाठक यह मान बैठा है कि आजकल केवल दो ही वाद काम कर रहे हैं- प्रगतिवाद और प्रयोगवाद और इन वादों के बाहर कविता हो ही नहीं रही है । यह समझा जाने लगा कि आज का कवि प्रगतिवादी है अथवा प्रयोगवादी, पर यह पूरा सत्य नहीं है । नये गीतिकाव्यकार न तो, इन दोनों दलों के कवियों से कम प्रतिभाशाली है और न संख्या में ही कम हैं । जानकी वल्लभ शास्त्री, गोपाल सिंह 'नेपाली', विद्यावती कोकिल, सुमित्राकुमारी सिन्हा , शान्ति मेहरोत्रा, हंसकुमार तिवारी, गिरिधर गोपाल, रामनाथ अवस्थी, सम्भूनाथ सिंह, श्रीपाल सिंह 'क्षेम' चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', पोद्दार-रामवतार 'अरुण', जगदीश गुप्त, शिवचन्द्र नगर, आलूरी बैरागी चौधरी, 'रसाल' सच्चिदानन्द तिवारी, गोपीकृष्ण गोपेश, शकुन्तला सिरोठिया , प्रभुदयाल अग्निहोत्री, तारा पाण्डेय, शिवबहादुर सिंह भदौरिया, जगत प्रकाश चतुर्वेदी, देवेन्द्र शर्मा, 'इन्द्र', रवीन्द्र 'भ्रमर' गोपाल दास सक्सेना 'नीरज', विरेन्द्र मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामावतार त्यागी, देवराज 'दिनेश', बालस्वरूप, 'रती' उपेन्द्र, गिरिजाकुमार माथुर, बलवीर सिंह 'रांग', केदारनाथ सिंह , उपेन्द्र नाथ 'अश्वक',

^१ डॉ. गण चन्द्र पति गुप्ता : संस्कृत साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. ७१४

शेखर, रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल', गंगा प्रसाद पाण्डेय, पद्मा सुधि, चन्द्र प्रकाश सिंह, गुलाब खण्डेलवाल, सोम ठाकुर, प्रभृति नये गीतिकारों की काव्य-साधना प्रगतिवादी अथवा प्रयोगवादी कवियों से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है । यह नया गीतिकाव्य अपने ठीक पिछले खेमे के गीतिकाव्य से कई बातों से भिन्न है । प्रगतिवाद की संकुचितता से परे इसमें उदार मानवतावादी दृष्टिकोण मिलता है और प्रयोगवादी शिल्पगत जागरूकता की अपेक्षा अधिक स्वस्थ शिल्प-प्रयोग इन कवियों ने किये हैं । उपर्युक्त दोनों वादों की अतिरेकता से मुक्त यह नव्य-गीतिकाव्य हिन्दी कविता का अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ विकास है ।

प्रत्येक युग की कविता विशिष्ट छन्द भी हुआ करता है । नूतन गीतिकाव्य का हृत्कम्पन, चिन्तन विजड़ित होने के कारण मुक्त छन्द में अभिव्यक्त हुआ है । मुक्त-छन्द अब अजनबीपन त्यागकर गीतों का नितान्त स्वाभाविक परिधान बन गया है । इन कवियों ने रस की अपेक्षा प्रभाव क्षमता पर अधिक ध्यान दिया है । नये उपमान, नये प्रतीक तथा नई काव्य भंगिमाओं की खोज में आज का गीतिकार आकाश-पाताल की दौड़ नहीं लगाता परन्तु अपने ही जीवन, घर और आंगन में बिखरी सामान्य से सामान्य वस्तु को प्रयोग करता है । प्रकृति की अब रहस्यमय सौन्दर्य से युक्त अप्सरि नहीं रही वरन् जीवन की अनिवार्य सहचरी बनकर काव्य में आई है । यह ठीक है कि इस युग में हमारे पास द्विवेदी युग के मैथिलीशरण गुप्त, छायावाद के प्रसाद, पन्त अथवा महाप्राण 'निराला' जैसा कोई बड़ा नाम नहीं है तथापि नव्यतर

प्रगीतकाव्य-भूमि पर बहनेवाले इन नये गीति-निर्झरों की लघु उपलब्धियों कम महत्वपूर्ण नहीं है ।^१

(१) गोपाल सिंह 'नेपाली' :

नवीन गीतिकाव्य के मानववादी- स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'नेपाली' का नाम अविस्मरणीय है । प्रकृति के प्रति सहज अनुराग और प्रगाढ़ प्रेम इनमें 'पन्त' सदृश ही मिलता है । प्रकृति का उन्मन-गुंजन इनकी गीतियों की आत्मा बनकर गुंजरित हुआ है । 'नेपाली' की प्रतिभा के तूलिकास्पर्श से प्रकृति सवाक होकर इनके गीतों में आयी है और अनुभूति रस के अनुलेपन में स्वयं रसमयी हो गयी है । 'उमंग' (१९३४), पंछी, (१९३४), रागिनी, (१९३५), 'नीलिमा', पंचमी, (१९४२), 'कल्पना,' 'ऑचल,' 'नवीन,' 'रिमझिम,' और 'हमारी राष्ट्रवाणी,' इनके साहित्य देवता को अर्पित काव्य प्रसूत हैं । इन संकलनों में प्रकृति, देश, राष्ट्रीयता से सम्बन्धित रचनाओं के अतिरिक्त प्रेम और सौन्दर्य के भी आभा मण्डित, हृदय संवेद, प्रगीत मिलते हैं । कुछ ही सीधे-सादे और मधुर शब्दों की रेखाओं में सारे वातावरण के माधुर्य को बौंध लेने की इनमें अद्भूत क्षमता है । कल्पना की नव्यता, अबाध प्रवाह एवं मधुर भावना की अनुभूति का सरस-स्पर्श इनके प्रगीतों की विशेषता है । रचनाएँ अधिक लम्बी नहीं हैं ।

भाषा अत्यन्त मधुर, सरस प्रांजल एवं कोमल है । बीच-बीच में आने वाले मधुरता-मण्डित तद्भव शब्द रूप 'नेपाली' जी की भाषा की निजी विशेषता है । भाषा लोक जीवन के अधिक निकट है और लोकगीतों की लयों और पदावलियों के समावेश से

^१ डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ. ४५९

उसमें पर्याप्त मधुरता और कोमलता आ गई है । कवि का न बधनेवाला मन इन गीतों में बँध नहीं सका है, किन्तु उदाम, अन्ध आवेग नहीं अतः भाषा जहाँ सुकुमार है वहाँ संयत भी । नेपाली की शैली में 'निजीपन' है । संयम और सन्तुलन के साथ ही शैली में पार्वत्य प्रदेश का थोड़ा ऊबड़ खाबड़ और पहाड़ी धारा का वेग भी है । नेपाली की शैली में ऐसा नहीं लगता है कि कवि ने शब्दों की छानबीन करके चुन-चुन कर शब्द रखे हैं । ऐसा लगता है कि उसके शर-सागर में जो शस्त्र हाथ पड़ते हैं, उनका प्रयोग करता है ।

अनुभूतियों की सहजतम् अभिव्यक्ति 'नेपाली' के गीतों का प्राण है । रसपूर्ण भाषा, लय, संगीतमय छन्द, सहजकोमल-प्रतीक, काठिन्य से सर्वथा परे रहने वाला पद-विन्यास, सुकुमार भाव-शय्या, सौन्दर्यमयी वृत्ति, श्रृंगारिक से अधिक रोमानी , भावावेश, आन्तरिक स्फुरण, मन की सहज प्रेरणा और कल्पना प्रवण यौवन की उष्मता लिए 'नेपाली' का गीतकार अविस्मरणीय रहेगा । नूतन गीतिधारा के सहृदय एवं अप्रतिम कवि रत्न 'नेपाली' अपनी निर्द्वन्द्व अनुभूति, निभ्रान्त-मौलिक कल्पना और अपने नव्य-प्रकृति-दृष्यों के सुमधुर-निर्व्याज-सौन्दर्य के कारण अमर रहेंगे ।

(२) जानकी वल्लभ शास्त्री :

जानकी वल्लभ शास्त्री उत्तर-छायावाद युग के प्रमुख कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष पर छायावाद का व्यापक प्रभाव होते हुए भी अपनी नवीनता के कारण वे कवि रूप में विशिष्ट हैं । शास्त्री जी को काव्य कला का विकास उनकी काव्य- कृतियों 'काकली', 'रूप-अनुरूप' 'तीर-तरंग,' 'शिप्रा,' 'मेघगीत,' 'वासंती-पतझड़' तथा 'अलविदा' आदि में देखा जा सकता है । यदि 'काकली' स्वर सन्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ,

तो 'रूप-अरूप' मूर्च्छना की दृष्टि से, 'तीर-तरंग' और 'वासंती-पतझड़' करुण-मधुर गायन की दृष्टि से, 'शिप्रा' और 'मेघगीत' गीतात्मकता की दृष्टि से तथा 'अवतिका' कवि के व्यक्तित्व में निखार और प्रौढ़-काव्यत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।^१

भाषा, छन्द और शैली की दृष्टि से उनमें पर्याप्त नवीनता है । भावों को उन्होंने अधिक प्रश्रय दिया है किन्तु कतिपय स्थलों पर कल्पना का स्वच्छन्द-नर्तन देखने को मिलता है । प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताएँ कवि की संवेदना तथा सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत सुन्दर बन पड़ी है । अभिव्यक्ति की सहज स्वाभाविकता भावों की सुष्ठु स्पष्टता तथा मधुर-सांगीतिका उनके गीतों की विशिष्टता है । उनका व्यक्तित्व एक कवि और गीतकार के रूप में असाधारण है ।

(३) तारा पाण्डे :

कवयित्री तारा पाण्डे अपने पुष्कल तथा लोकप्रिय कृतित्व से हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हो चुकी हैं । तारा जन्मजाति कवि हैं । उनके भीतर मौलिक प्रतिभा का मौलिक श्रोत वर्तमान है । उनकी कविता का सबसे बड़ा गुण उनकी हार्दिकता है । उनकी वाणी में निसर्ग जगत् का टटकापन तथा उनकी रचनाओं में फूलों की पंखुड़ियों का सा सौन्दर्य, मार्दव तथा सद्यः स्फुट आभा मिलती है । उनकी वाणी निःसन्देह बौद्धिक उहापोहों से मुक्त, स्वच्छन्द और सरल हृदय की वाणी है , इसलिए उसमें इतनी स्वाभाविकता पाई जाती है । 'सीकर' (१९३४), 'रेखाएँ,' (१९४१), 'गोधूलि,' (१९४४) , 'शुकपिल,' 'आभा,' 'विणुकी,' 'काकली' (१९५३), 'अंतरंगिणी,' (१९४६), 'विपची,' (१९५०), 'रंजना' (१९५८) आदि आपकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं । तारा

^१ प्रताप नारायण टण्डन : आधुनिक साहित्य, पृ. १०६-१०७

पाण्डे में हमें छायावादी काव्य-शैली की कोमल किन्तु मार्मिक मानव-संवेदनाओं के दर्शन होते हैं । उनकी प्रतिभा मुख्यतः गीति-प्रतिभा है, जो अपनी गम्भीर भाव प्रधानता, मार्मिकता तथा अप्रतिम संगीत स्वर-प्रवाह से हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहती । कवयित्री के संवेदनशील हृदय में एक गहरी व्यथा की छाया व्याप्त है जो उनकी रचनाओं में धूप-छोंह की तरह गुंथी मिलती है । जहाँ तक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, वहाँ तक स्त्री कवियों में इतनी सरलता से भाव-चित्र खींचने वाली दूसरी लेखिका नहीं है ।^१ तारा पाण्डे की भाषा में प्रारम्भ से ही एक लालित्य माधुर्य तथा सहज प्रवाह पाया जाता है । उनके गीत उनके हृदय की गहरी भावना में ढककर एक विशेष मार्मिक मार्दप लिये होते हैं । छन्द का प्रत्येक चरण गीतात्मकता की मधुर झंकार से पाठक के हृदय को भावना में तन्मय तथा रस विभोर कर देता है । श्री विसम्भर 'मानव' के शब्दों में - आपने कभी वर्षा ऋतु के बाद बाढ़ उतरने पर निर्मल जल वाली शरद् ऋतु की नदी को मन्द, गम्भीर, शान्त गति से बहते हुए देखा है ? तारा पाण्डे का मन और उसकी रचनाएँ वैसी ही है ।

(४) विद्यावती 'कोकिल' :

'कोकिल' जी का नाम गीतकारों की परम्परा में उल्लेखनीय है । १९४० में आपकी प्रारम्भिक रचनाओं का प्रथम काव्य संकलन 'अंकुरिता' प्रणय, प्रगति एवं जीवानानुभूति के हृदय ग्राही गीतों के संग्रह रूप में प्रकाशित हुआ । 'मों' (१९४२) और 'सुहागिन' (१९५२) आपके गीत संग्रह हैं । इन गीतों की विभोरता, तन्मयता एवं सहज अनभूतिशीलता आज के नारी-मनोविज्ञान, सामाजिक यथार्थ एवं मानवीय

^१ नई कविता, पृ. ८५

आकांक्षा को भजनों की पावनता प्रदान करती दिखाई देती है । 'सुहाग गीत' लोक गीतों का संग्रह है जो १९५३ में प्रकाशित हुआ । 'पुनर्मिलन' (१९५४) के गीतों में कवयित्री ने उस प्रियतम के साक्षात्-मिलन का स्पर्श प्राप्त किया है, जिसकी छाया के पीछे वह जीवनभर भागी है । 'अमरज्योति' नामक महाकाव्य अभी अप्रकाशित है । महर्षि अरविन्द के 'सावित्री' महाकाव्य का हिन्दी काव्य-रूपान्तर भी 'कोकिल' जी कर रही है । 'आरती' इनका एक और काव्य संग्रह है ।

'कोकिल' जी के काव्य में भाव-विभोरता और संगीतात्मकता की अधिकता के कारण पाठक का ध्यान उनके कला पक्ष की त्रुटियों की ओर नहीं जाता और सच बात यह है कि उनकी रचनाएँ तो इतनी मौलिक हैं कि कला की अपरिपक्वता की ओर इंगित करना वैसी ही कठोरता का काम लगता है जैसे- कबीर और मीरा की कला के दोषों को गिनना । 'कोकिल' जी मूलतः एक गीतकार है । गीति-तत्त्व की सहज तरलता उनकी कविताओं की आन्तरिक विशेषता है । उनके स्वर में अन्तर के बोल के झंकार एवं वेदना की एक कोमल लहर होती है । जो पाठक - श्रोता के मन को सिक्त कर अंतर्लोक के द्वार की झांकी कराने लगती है । इनके काव्य में अरविन्द-दर्शन को नारी हृदय की अनुभूति का कोमल परिधान मिला है । डॉ. शिवकुमार मिश्र ने उनकी काव्य-कला का विश्लेषण करते हुए इनकी गणना निस्संकोच रूप में आधुनिक गीतकारों की प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत की है जो सर्वथा उचित ही है ।

फूलों के सुकुमार निर्झर-सी अनायास बहनेवाली कला मण्डित इनकी गंगा सी पावन, कुहूनाद सी मधुर, अध्यात्म-विभूषित कविता, आरोह-अवरोह के पालने में गुलाबों सी तैरती है । भावनाओं के बेल-बूटे और कल्पना की कशीदाकारी से विरहित इनकी

कविता में भावनाओं का ज्वार कला के कगार तोड़ता बहता है, जिसके भग्न सौन्दर्य में भी 'कोकिल' जी के मन और आत्मा का संगीत हिल्लोरित है ।

उपसंहार :

हिन्दी-साहित्य में पहली बार इस युग में कविता को संगीत से अलंकृत कर मंच पर लाया गया । इस युग के अधिकांश कवि अपने सुरीले कण्ठ के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए । यूँ शिल्प की दृष्टि से कोई विशेष उपलब्ध नहीं रही किन्तु गीत काव्य-विद्या को लोकप्रिय बनाने में इनका योगदान विशेष रहा । कवि-सम्मेलन के मंच पर 'गलेबाज गीतकार' कहलाने का लोभ संवरण न कर पाने के कारण इनमें से अधिकांश गीतकार भाव की हत्या कर गिने- चुने-प्रणय-प्रसंगों की पुनरावृत्ति ही अपने कोकिलकण्ठ से कर क्षणिकवाहवाही लूटते रहे । इसलिए नूतन गीतकारों पर भावुकता अतिशय, पुनरावृत्ति, बुद्धि तत्व के अभाव और कल्पना की दुर्बलता का आरोप लगाया जाता है । यह सत्य है कि अनेक गीतकारों में छिछलापन मिलता है, चित्तवृत्ति का गाम्भीर्य सभी में सम्भव भी नहीं है । एक ही गीतकार के कई गीतों में यह दोष मिलता है । किन्तु बहुत से गीतों में सफल काव्य भी मिलता है ।

बार-बार यह कहा जाता है कि गीतकार का स्तर गिर गया है, वह गायक अधिक है , कवि कम । अंशतः यह आरोप सही है । कविता को जनप्रिय बनाने के लिए प्रौढ़ता में कमी अवश्य आई है । छायावादी प्रौढ़ता तथा उच्च स्तर अब नहीं दिखाई पड़ता । संक्षिप्तता के स्थान पर क्लिष्टता बढ़ी है । प्रसाद गुण का प्रसार और स्तर का हास हो गया है । किन्तु सब गीतों के विषय में यह सत्य नहीं है । इन गीतों में छायावाद जैसी प्रौढ़ता न होने पर भी उन गीतकारों में शक्ति है, जिसका विकास हो रहा है । नवीनता के नाम पर व्यर्थ आपाधापी भी इनमें नहीं है । ये अनुभूति

पर अधिक बल देते हैं , सामान्य अनुभूति पर । प्रगतिवाद की 'स्वाभावोक्ति' न अपनाकर गीतकार 'समाधि गुण' अधिक अपना कर चले हैं ।

पुरातन के प्रति मोह अथवा नूतन के प्रति दुराग्रह इन गीतकारों में नहीं मिलता फलतः इनकी कला आयासलब्ध न होकर अयाचित है, स्वाभाविक है । भावनाएँ यहाँ विद्युत वसन और कल्पना के मेकअप से सज्जित होकर नहीं आतीं पर घर धुली साड़ी की हंस-पंख सी उजलाहट से उसमें एक भाव गरिमा आ गयी है । इन गीतों की भारतीय गृहलक्ष्मी जैसी सौम्य छवि छायावादी अप्सरि, हालावादी प्रेयसी, प्रगतिवादी समाज सेविका, प्रयोगवादी आधुनिक अथवा नई कविता रूपी हिप्पी किशोरी से सर्वथा भिन्न है, जिसकी सहज सुहाग श्री से घरका आंगन चम्पड फूलों सा महकता है ।

अध्याय-तीन

गीति काव्य का स्वरूप विश्लेषण

गीति काव्य का स्वरूप :

जब कविता के कमनीय चरण के पर संगीत की स्वर लहरियों नृत्य करने लगती हैं , जब संगीत की मधुर कामिन्दी कवि अन्तरिम भावानुभूतियों की सौन्दर्य भागीरथ में आ मिलती है तब गीत का जन्म होता है । गीति की सुन्दरता उसकी आकारगत लघुता,, तीव्रभाव-सकुलता, आत्माभिव्यंजना, संगीतात्मकता, निर्बन्धता एवं प्रभावगत एकरूपता है । 'गीति' शब्द का प्रयोग आजकल अनेक अनिश्चित अर्थों में हो रहा है । गीत, गीति, प्रगीत आदि परिभाषिक शब्दों का कई सन्देहास्पद अर्थों में प्रयोग देखकर यह आवश्यक हो जाता है कि गीति काव्य के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व उपर्युक्त शब्दों को लेकर प्रचलित भ्रान्ति को दूर कर लिया जाय । हिन्दी में गीति काव्य के पर्याय रूप में पश्चात्य साहित्य को 'लिरिक पोइट्री' शब्द रूढ़ हो चला है, तथापि कुछ लोग इसके लिए गीतिकाव्य, प्रगीतमुक्तक, प्रगीतकाव्य और वैदिक शब्दों का प्रयोग भी करते हैं । हिन्दी कविता के संदर्भ में 'गीत' शब्द आशय की परीक्षा की जाय तो पता चलता है कि गीत उस कविता को कहते हैं जिसमें संगीत और काव्य दोनों कलाओं का सम्यक्-परिपाक होता है। मध्ययुगीन भक्त कवियों के काव्य से गीत का यही अर्थ ध्वनित होता है किन्तु आधुनिक कविता ने गीत के इस सीमा का अतिक्रमण कर दिया है । अतः आजकल गीत अंग्रेजी शब्द 'सांग' का समानार्थी है जो उद्भव और विकास की दृष्टि यद्यपि वर्तमान गीतों का आदि रूप है तथापि अब वह उसके एक भेद रूप में परिगणित किया जाता है । प्राचीन काल से ही गीति काव्य का यही अर्थ हमारे साहित्य

में चला आ रहा है । अतः गीतिकाव्य नाम 'लिरिक' के पर्याय रूप में भ्रामक है । लिरिक का एक वाह्य लक्षण उसकी पूर्ण पर प्रसंग निरपेक्षता अवश्य है, इसी कारण वह मुक्तक के अन्तर्गत आ जाता है किन्तु मुक्तक नाम से हम जिस काव्य रूप को जानने के आदि हो गये हैं, उसकी मूल प्रवृत्ति और रूप रचना, दोनों लिरिक से भिन्न है , अतः उसे मुक्तक के एक भेद के रूप में उसकी महत्ता पर आघात करना है । 'प्रगीत' की 'गीति' की तरह लिरिक के तत्त्वबोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है , परन्तु उसकी तुलना में गीतिशब्द में अधिक सुन्दरता जान पड़ती है । प्रगीत विशेषण है, जिसे सम्पूर्ण अर्थ देने के लिए 'मुक्तक' या काव्य विशेष की अपेक्षा रही है, और वह स्वयं गौण रह जाता है, प्रधान शब्द 'मुक्तक' या 'काव्य' रह जाते हैं । जिनमें पहला भिन्न अर्थ का द्योतक है और दूसरा अत्यधिक सामान्य होने से अतिव्याप्ति दोष से दूषित है । लिरिक का शाब्दिक अनुवाद वैणिक भी कहीं-कहीं देखने में आया है, परन्तु 'लांयर' से व्युत्पन्न रिलिक न जाने कब का उस वाद्य यंत्र से अपना नाता सदा के लिए छोड़कर कहीं अधिक व्यापक अर्थ में रूढ़ हो गया है, तब वीणा पर लांयर के अर्थ का आरोप करके उसे वैणिक अर्थ गढ़ना हास्यास्पद सा है, अतः लिरिक के गीति शब्द सबसे अधिक उपयुक्त है । इसी कारण उसका चलन भी अधिक व्यापक हो रहा है ।^१ रामखेलावन पाण्डेय एव डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा के उपयुक्त मत के विपरीत 'लिरिक' के पर्याय रूप में गीति शब्द की अपेक्षा प्रगीत शब्द को ही उपयुक्त माना गया है, ' छायावादी गीति-काव्य को भक्तिकाल के पद-'साहित्य' से पृथक् करने के लिए प्रधानतः गीत को 'प्र'

^१ धीरेन्द्र वर्मा : (प्र.सं.) हिन्दी साहित्य कोष, भाग-१, पृ. २८९, ९०

(विश्लेषण) उपसर्ग से संयुक्त किया गया ।^१ खड़ी बोली को अपनाने के पश्चात् हमारे नवागत कवि सूर, तुलसी और मीरा की गीति पद्धति से विरक्त हो गये । अब जो गीतियाँ लिखी जाने लगी उन्हें प्रगीतियों (Lyrics) कहना ही समुचित होगा ।^२ इस प्रकार लिरिक के पर्याय रूप में प्रचलित सभी शब्दों में प्रगीत शब्द अधिक सार्थक है । आधुनिक में यह शब्द इसी अर्थ से सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत और प्रचलित भी हो गया है ।^३ स्पष्ट है पाश्चात्य लिरिक में संप्रभावित होकर लिखी गयी अधुनातन गीति रचनाओं के लिए गीतिकाव्य शब्द ही अधिक प्रचलित, सूकर और लिरिक की समस्त तात्त्विक विशेषताओं के अवबोधन में पूर्णतया सक्षम होने से सर्वाधिक ग्राह्य है ।

आधुनिक गीतों के लिए गीतिकाव्य शब्द का व्यवहार नितान्त नवीन है, वस्तुतः गीतिकाव्य गीत शैली का नव्यतम विकास है । लोचन प्रसाद पाण्डेय ने 'कविता कुसुम माला' (प्रथम संस्करण, जून १९०९) की भूमिका में गीतिकाव्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया और 'पाठकों से एक निवेदन' के अन्तर्गत लिखा कि काव्य के तीन प्रकार हैं—गीतिकाव्य, श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य । भारतीय गीतिधारा के क्रमिक एवं तात्त्विक विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि संगीत तत्व गीतों से सदैव अविच्छिन्न रहा किन्तु वह क्रमशः गौण अवश्य होता गया और काव्यत्व की मात्रा उसी अनुपात में बढ़ती गयी, अतः गीत गीतिकाव्य होते गये । गेयपदों में संगीत तत्व प्रधान है, गीत में संगीत

^१ कल कान्त पाठक :, आधुनिक हिन्दी काव्य, भाग-२, परिशिष्ट, पृ. १

^२ लालधर त्रिपाठी, 'प्रवासी' : गीति काव्य का विकास, पृ. ४५२

^३ डॉ. गणेश खरे : आधुनिक प्रगीत काव्य,, पृ. १९

तथा काव्यत्व की शास्त्रीयता का संतुलन तथा गीतिकाव्य में संगीत तत्व से काव्योत्कर्ष को अधिक प्रधानता मिलने लगती है ।

गीत परम्परा भारत के लिए नवीन नहीं है । गीत-काव्य का विधान लोक गीतों में मिलता है । शनैः शनैः साहित्य में भी गीति-काव्य को स्थान मिला । लोक गीतों की परम्परा भौतिक रूप से जनकण्ठों में ही पनपती रही । सर्वप्रथम गीतों का प्रयोग नृत्य एवं संगीत के क्षेत्र में किया गया । यद्यपि ऋग्वेद की ऋचाएँ भी सस्वर पढ़ी जाती थी । इस रूप में उन्हें ही गीत के उद्भव का स्रोत माना जाता है । किन्तु सामवेद की संगीतात्मक पंक्तियों को भी गीतिकाव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती । वस्तुतः साहित्यिक गीतों की रचना का प्रारम्भ सर्वप्रथम प्राकृत या लोकभाषा में हुआ । अपभ्रंश के सिद्ध कवियों ने गीत-काव्य को भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया । विभिन्न राग-रागनियों में बँधे गीत इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति ही अधिक प्रभावी रूप में करते देख पड़ते हैं ।

गीतों की परम्परा क्षेमेन्द्र , जयदेव , विद्यापति एवं सूर आदि गीतकारों के द्वारा अखण्ड रूप से पोषित होती रही है । आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा यह धारा विकसित हुई और पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण कर छायावादी कवियों ने इसे अग्रोन्मुखी बनाने का सफल प्रयास किया । किन्तु प्रगतिवादी कवियों के द्वारा बौद्धिकता एवं सामाजिकता का समावेश कर दिये जाने से इसमें गीत के प्रमुख तत्वों की उपलब्धि इस युग में भी होती है । प्रयोगवादी कवि गीतों की परम्परा से दूर होते जा रहे थे । परम्परा से अलग वे केवल प्रयोग में ही लीन थे । किन्तु राष्ट्रीय भावनापूर्ण गीतों में यहाँ भी शुद्ध साहित्यिक गीतों का सृजन हुआ है । नई कविता एवं अकविता के युग में भी हिन्दी की मधुर गीत-काव्य धारा का स्रोत सूखा नहीं है । राष्ट्र पर आये संकट के

समय एकता, सुरक्षा एवं वलिदान की भावना गीतों में व्यक्त होती है । प्रारम्भ से अब तक गीतों की परम्परा का निर्वाह राष्ट्रीय भावनापूर्ण गीतों में सफलतापूर्वक हुआ है । यद्यपि भक्ति काव्य में गीतिकाव्य परम्परा उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर थी , किन्तु गीतों की परम्परा को इस अकविता के युग तक जीवित रखने का श्रेय राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीतों की ही है । ऐसे काव्यकार राष्ट्रीय संकट के समय पूर्ण सजग हो जाते हैं । शान्ति के समय वे उतने सजग नहीं रहते अतः ऐसी स्थिति में गीति काव्य की धारा मंद गति से प्रभावित होती रहती है ।

पाश्चात्य तत्वों के अनुसार गीतिकाव्य कवि के अन्तर्मन के विविध व्यापारों को बाहर प्रकट करने का सफल माध्यम है । इसके निर्माण की प्रेरणा कवि को अपने हृदय से मिलती है, अतः उसमें भावमयता अपेक्षा कृत अधिक रहती है । गीतिकाव्य का सम्बन्ध मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय से अधिक होता है क्योंकि वह कवि के हृदय के हृदयस्थ सागरमंथन को भावाकुल स्वरों में रूपायित करती है । इसी आत्माभिव्यंजना एवं भाव प्रधानता के कारण गीतिकाव्य, काव्य के अन्तवृत्ति निरूपक वर्ग में परिगणित किया जाता है । इसलिए नहीं कि गीतिकार का वाह्य जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं होता । वस्तुतः स्वानुभूतिपरक कविता में हम यह देखते हैं कि कवि ने अपनी अनुभूति की व्यंजना किस शैली में की है । गीतिकाव्य में कवि जब अपने अन्तःस्थल में उद्देलित ज्वार को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करता है तब भावनाएँ केवल उसी की होकर व्याप्त होती हैं । इस आत्मनिष्ठता और वैयक्तिकता के कारण यहाँ उसका अहं ही प्रमुख होता है । इसी आत्मानुभूति की प्रधानता के कारण गीतिकाव्य को हम काव्य के अन्तवृत्ति निरूपक के अर्थ में रखते हैं ।

गीतिकाव्य के इस वर्ग में वर्गीकृत करने का दूसरा कारण यह है कि उसमें मनोवेगों की अभिव्यक्ति होती है, जिनका सम्बन्ध हृदय से है, बुद्धि से नहीं । कवि के आत्मप्रकाशन के साथ ही इसकी शैली भी बड़ी व्यक्ति प्रधान (Individualistic) होती है ।

कवि के अन्तःप्रदेश से निकटकतम् सम्बन्ध रखनेवाले इस काव्य रूप की सर्जना के पीछे भारतीय एवं पाश्चात्य गीतिकाव्य कीदो वैभवपूर्ण परम्परा रही है , अतः नूतन गीतिकाव्य के स्वरूप की सम्यक् जानकारी के लिए दोनों गीतिकाव्य परम्पराओं के उद्भव और विकास, लक्षण, तथा मूलतत्त्व आदि से अवगत होना आवश्यक है ।

गीतिकाव्य :

‘लिरिक’ के तत्त्वबोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूत आधार गीत अथवा गीतिकाव्य है । गीत का प्रयोग प्राचीनतम् है, और नाट्यशास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं - ‘गीतं शाब्दित मानयोः) (हिमचन्द्र) और ‘गीत गानमिमे सये’ (अमरकोश, १.६.२६) । गीतिकाव्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लोचन प्रसाद पाण्डेय ने ‘कविता-कुसुम-माला’ (प्रथम संस्करण जून, १९०९) की भूमिका में किया और ‘पाठकों से एक निवेदन’ के अन्तर्गत लिखा कि काव्य के तीन प्रकार हैं- गीतिकाव्य, श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य । गीतिकाव्य गीत शैली का नव्यतम् विकास है । गीत और गीतिकाव्य का विकास लोकगीतों से हुआ है । जयदेव कृत ‘गीत-गोविन्द’ के गीतों को इसका आदि श्रोत मानने का भ्रम होता रहा है । बौद्धों ने लोक भाषा को अधिक मान्यता दी थी यद्यपि संस्कृत में लिखे बौद्ध साहित्य का अभाव नहीं है । सिद्धों ने लोक भाषाओं को आधार बनाया , उनके ‘चर्यागीत’ लोक गीतोंके उपदेशात्मक अभियान है । महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने इन गीतों को प्राचीनतम् बँगला रचना का आदर्श और उदाहरण माना है, किन्तु आधुनिक शोधकों ने इसकी अयथार्थता सिद्ध कर दी

है । 'चर्यागीत' शास्त्रीय राग-रागनियों के अन्तर्गत वर्गीकृत है, किन्तु राग-रागनियों के नाम सूचित करते हैं कि इनके वर्गीकरण में स्वतंत्रता थी और देश-विशेष में भिन्न-भिन्न राग प्रचलित थे । देश विशेष में प्रचलित लोक गीतों की लयात्मक पद्धति का नामकरण उस देश के नाम पर हुआ । राग गुर्जर, सोरठ, गौड़ आदि इसी वर्ग के हैं । गुर्जर से गूजर और गूजर से गूजरी बनता हुआ यह संत साहित्य में आया । गौड़ी से गवड़ी और गवड़ा का रूप बना , जो सन्त साहित्य में मिलता है । 'कबीर-बीजक' का चॉचर चौराहे पर गया जाने वाला लोकगीत है, जिसके चॉचर चर्वरी रूप का उल्लेख 'पालि महाकाव्याकरण' में आया है । 'बीजक' की बेली राजस्थानी में प्रचलित बेली नामक काव्य का पूर्णरूप है । सिद्ध साहित्य में प्रचलित गीत नाथ सम्प्रदाय में सब्दी, सबद नई = सब्दी हुआ । गुरु के शब्द होने के कारण ऐसा नामकरण हुआ । लौकिक गीतों की परम्परा विद्यापति की पदावली में मिलती है और उपासना मूलक गीतों की नाचरी में । राधा-कृष्ण विषयक गीतों पर जयदेव की छाया और छाप है । यह परम्परा बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक तक किसी न किसी रूप में प्रचलित रही , लोचन प्रसाद पाण्डेय और मुकुटधर पाण्डेय की रचनाएँ इसी प्रकार की हैं । इस स्थिति से स्पष्ट हो जाता है कि गीतों का सम्बन्ध शास्त्रीय संगीत से बना रहता है । यद्यपि संगीततत्त्व अविच्छिन्न रहा, किन्तु वह क्रमशः गौण होता गया और काव्यत्व की मात्रा उसी अनुपात में बढ़ती गयी, अतः गीत गीतकाव्य होते गये ।

गीतिकाव्य पश्चिम से आया हुआ विधान है , जिसकी वही संज्ञा थी 'लिरिक' । लिरिक के अर्थ विकास का इतिहास गीति काव्य के तात्त्विक विश्लेषण के लिए आवश्यक होगा । अरस्तू ने लिरिक पर विचार नहीं किया, केवल तीन स्थलों पर स्तंभ और मन्त्रोंच्चारण (डिथीहैम्बस और नोम्स) के सम्बन्ध उल्लेख मात्र किया है । काव्य के

तीन वर्ग स्वीकृत थे- प्रबन्ध काव्य (एपिक), रूपक (ड्रामा) और गीत (सांग) का सामान्य नाम या लिरिक । लिरिक सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन और विकास होते रहे हैं । गीतिकाव्य में विकसित धारणा का यही आधार है । साहित्यिक वर्गीकरण में विभिन्न विधानों की निश्चित रेखा अमान्य होगी क्योंकि पारस्परिक अन्तरावलम्बन की प्रक्रिया सतत् क्रियाशील रहती है । 'साकेत' का नवम सर्ग गीतात्मक है । 'कामायनी' के अनेक अंश स्वतंत्र गीतिकाव्य हैं और 'प्रेम पथिक' में कथात्मक गीतावेश है । इसी तरह वर्णनात्मक गीति और नाट्यगीति के विधान होते हैं ।^१ 'लिरिक' में गीतितत्व, गीतात्मकता एक अनिवार्य और निर्णायक तत्व है, और रही गेयता आरम्भ में अनिवार्य और अनन्तर गौण हो गयी । उन्नीसवीं शती के रोमांटिक कवियों ने जब 'सांग' शीर्षक से गीत लिखे, तब उनमें भी निर्णायक तत्व 'गीतात्मकता' ही था । प्रायः सभी गेय थे । छायावाद के गीतों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है ।^२

'प्रबन्धकाव्य' अथवा रूपक में कवि ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक पात्रों पर अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेपण करता है और उनकी अनुभूतियों तथा भावनाओं को निजत्व के अनुरूप रूपायित करता है, गीति में वह निर्बाध और प्रत्यक्ष व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देता है, अतः इसमें पर प्रत्यक्ष, संकोच और कुण्ठाग्नि वैयक्तिक व्यक्तित्व और उच्छसित भाव-तरंग को वाणी दे पाता है, इसलिए इसमें सहज तरलता, अबाध मुक्तता और प्रत्यक्षानुभूति का स्वर मिलता है । वैयक्तिकता इस प्रकार गीतिकाव्य की अन्यतम

^१ हिन्दी साहित्य कोष : गीतिकाव्य - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, भाग-२, पृ. २६१

^२ डॉ. अजब सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद, पृ. २०६

कसौटी है । अवाध कल्पना, असीम भावुकता, विशुद्ध भावात्मकता, वर्ग-कोलाहल की चिन्ता से मुक्त विचारवादी अथवा निष्कर्षोपलब्धि के भार से मुक्त भावधारा गीतिकाव्य के प्रकृत विषय है, इसमें सिद्धान्तीकरण का अवकाश नहीं । विचार को भी गीतों में भावात्मक माध्यम ग्रहण करना पड़ता है । भावात्मक स्थिति क्षण-स्थायिनी होती है, अतः उसे अभिव्यक्त करनेवाली रचना भी नातिदीर्घ हो रहती है, संक्षिप्तता गीतिकाव्य का प्राण है । कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को गीतिकाव्य कहते हैं ।

हिन्दी में बाबू गुलाब राय ने मुक्तक काव्य के दो भेद माने हैं- पाठ्य और गेय ।^१ गेय के अन्तर्गत ही 'गीतिकाव्य' माना जा सकता है ।^२ बहुत सारे आलोचकों ने हिन्दी के गीतिकाव्य को अंग्रेजी के वैणिक (लिरिक) से प्रभावित माना है ।^३ मैं समझता हूँ कि हमारा आधुनिक गीतिकाव्य प्राचीन पदों का ही विकसित रूप है , जिनमें वैयक्तिकता, भावात्मक तीव्रता आदि गुणों का विशेष रूप से समावेश हुआ है और भावनाओं की उमड़न-धुमड़न के अनुसार विभिन्न छन्दों में उनका निर्माण हुआ । पदों की अपेक्षा गीतिकाव्य में भक्ति, नीति, वैराग्य आदि से बढ़कर वैयक्तिक सुख-दुःख ही महत्वपूर्ण हो उठा है । छायावाद और रहस्यवाद की प्रतिनिधि गीतकर्त्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने गीतिकाव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है - “ सुख-दुःख के

^१ सिद्धान्त और अध्ययन : पृ. २२५

^२ प्रो. विनय कुमार : तुलसीदास का प्रगीत काव्य , पृ. २

^३ डा. मनमोहन गौतम : सूर की काव्य कला, पृ. ५२

भाववेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है ।''^१

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने गीतिकाव्य को कविता का 'निर्व्याज रूप' और 'सार तत्व' कहा है । उन्होंने रचना और रचनाकार की शुद्धता का उल्लेख किया है । वाजपेयी ने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता की अपेक्षा गीतिकाव्य को अधिक व्यापक भावात्मक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध माना है तथा नवीन काव्य शैली के रूप में इसे स्वीकार किया है । पं. रामदहीन मिश्र ने गीतिकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-“ जिस गीतिकाव्य में शब्दों की सुन्दर ध्वनि, सुकुमार संदर्शन, सरल, सुन्दर तथा मधुर शब्द, कोमल कल्पना, संगीतात्मक छन्द, अनुभूति की विभूति, भावानुकूल भाषा और कलापूर्ण अभिव्यक्ति हो, वह गीति कविता प्रशंसनीय है ।”

डॉ. रामखेलावन पाण्डेय ने हिन्दी गीतिकाव्य के बहुमुखी प्रसार को अपेक्षाकृत नवीन मानते हुए विकास-क्रम की स्थिति में गीतिकाव्य की परिभाषा यों दी है-“वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनशील संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य है ।”^२ और 'गीतिकाव्य अतः कवि के मन पर पड़नेवाले जीवन के प्रभाव की सौन्दर्यपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति है ।’^३ डॉ. नगेन्द्र ने गीतिकाव्य के दो रूप स्वीकार किये हैं - आत्मनिवेदन और मनोरंजन । उन्होंने दीपशिखा की आलोचना करते हुए लिखा है- “हिन्दी में - विश्व के लगभग सभी साहित्यों में- गीत-परम्परा आदि काल से चली आती है । या यो कहिए कि कविता का मूलरूप ही गीत है । गीत के इतिहास पर दृष्टि डालने से उसके दो

^१ महादेवी का विवेचन-आत्मक गद्य , पृ. १४१

^२ गीतिकाव्य, पृ. ३६

^३ गीतिकाव्य, पृ. १००

प्रयोजन हैं - आत्मनिवेदन और मनोरंजन । “^१ मनोरंजन शब्द अत्यधिक व्यापक है , उसके अन्तर्गत, ‘ संगीतात्मकता’ भी समाहित है ।

गीतिकाव्य के सम्बन्ध में अब तक कितने विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार किया गया, उनमें बहुत कुछ साम्य है । कहीं-कहीं एक मूल तत्व को ही विभिन्न शब्दों में कहा गया है । सामान्य रूप से विचारने पर गीतिकाव्य की परिभाषाओं से छनकर निम्नलिखित तथ्य मुख्यतः स्पष्ट होते हैं-

१. यह विषयी प्रधान होता है । इसमें वैयक्तिक भावनाओं की प्रधानता होती है । आत्मनिवेदन ही प्रमुख होता है ।
२. संगीतात्मकता अनिवार्य है । यह शब्द, अर्थ और विचार तीनों की हो सकती है ।
३. भावों की तीव्रता और एकाग्रता आवश्यक है ।
४. भावों की तीव्रता और एकाग्रता के लिए आकार की संक्षिप्तता आवश्यक है ।
५. एक ही केन्द्रीय भाव को विभिन्न चित्रों से पुष्ट किया जाता है ।
६. कल्पना और चिन्तन का उपयोग बिना किसी भूमिका के प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है । तीर सीधे लगता है- चक्कर काटकर नहीं ।
७. रागात्मक तत्वों की अन्विति होती है ।
८. भाव-क्षेत्र में व्यक्तिगत भौतिक उद्भावनाओं के उद्घाटन का विशेष अवसर मिलता है ।

^१ विचार और अनुभूति , पृ. १२१

९. हृदय के भावों के चित्रण के लिए जीवन और जगत् के सौन्दर्य और उसकी अभिव्यक्ति के अनेक रूप होते हैं ।

१०. प्रत्येक गीत निरपेक्ष होता है , उसमें पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता ।

११. चित्रात्मक टेक की केन्द्रीय भावना के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक होती है ।

उपर्युक्त तथ्य ही प्रधानतः गीतिकाव्य के निर्माण में सहायक होते हैं । अतएव, एक एककर सभी प्रेरक तत्वों की सूक्ष्मता पर विचार करना आवश्यक है ।

गीतिकाव्य के संदर्भ में भारतीय अवधारणा :

भारतीय गीतिकाव्य का जन्म गीत की मधुर स्वरलहरियों में अभिषिप्त होकर ही हुआ है । आदिग्रन्थ ऋग्वेद की संगीतमयी ऋचाओं में आदिमानव का हर्ष -विषाद एवं विविध भावानुभूतियों तो मूर्तिमान है ही, साथ ही इन ऋचाओं का उन्मुक्त कल्पनावितान सार्थक शब्द योजना, सजीव भाव व्यंजना और सशक्त रूपविधान वस्तुतः आश्चर्यचकित कर देनेवाला है । काव्य और संगीत के मणिकांचन संयोग के कारण ही सामवेद आदि गान कहा गया है । वैदिक साहित्य में गाने के अर्थ में-गा, गातुः, गातृः, गीत, गीतम्, गीतिकम् गीति, गीतिन, प्रगीताः आदि शब्दों का बार-बार उल्लेख मिलता है किन्तु प्राचीन संस्कृत भाषा या साहित्य में गीतिकाव्य नामक कोई शब्द विद्यमान नहीं है । उस समय तो गीति काव्य की कल्पना ही असम्भव थी क्योंकि काव्य की गीति से वियोग विचार-गोचर ही न था ।^१ इस युग के काव्य में संगीत अपरिहार्य तत्व था ।

^१ डॉ. विनय मोहन शर्मा (रूपान्तकार) गीतगोविन्द, प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, चम्पू, इत्यादि अनेक काव्यरूपों की सृष्टि और लक्षण चर्चा प्रभूत परिमाण में हुई, किन्तु गीतिकाव्य को स्वतंत्र विधान न मानकर उसकी समाहित मुक्तक के एक भेद के रूप में हुई । काव्य शास्त्र के आदि ग्रन्थ नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने प्रासंगिक रूप से उसकी चर्चा की है ।^१ नाट्यशास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं- गीतं शाब्दित गानयोः (हिमचन्द्र) और 'गीतं गानमिमे समं' ।^२ आचार्य विश्वनाथ ने गेयपद का उल्लेख रूपक प्रकरण के अन्तर्गत करते हुए उसे स्थितपाठ्य कहा है ।^३ तदयुगीन संगीत शास्त्र के ग्रन्थों में अवश्यमेव स्वतंत्र रूप से गीत के तत्त्वों का निर्देशन और विभाजन मिलता है । संगीतशास्त्रियों ने उस वाक्य को गीत कहा है जो धातु और मात्रा युक्त हो । संगीतरत्नाकर में गीत की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है- 'स्वरो का वह गठन जो मनोरंजक हो, गीत है ।'^४ गीत के वैदिक और लौकिक दो भेद किये गये हैं । वैदिक गीतों के अन्तर्गत सामगीत आते हैं और लौकिक गीतों के अन्तर्गत मार्ग गीत तथा देश गीत । मार्ग गीतों में शुद्ध राग-रागनियों तथा देशी गीतों के भीतर दादरा, टप्पा, गजल, ठुमरी आदि आते हैं । यहाँ यह स्मरणीय है कि गीत की उपर्युक्त परिभाषाएँ तथा विभाजन संगीत की दृष्टि से है, काव्य की दृष्टि से नहीं ।^५

प्राकृत साहित्य में मुक्तक परम्परा से भिन्न थेर-थेरी गाथाओं में शुद्ध गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं । इन रचनाओं को सर्वप्रथम गीतिकाव्य के नाम से अभिहित भी

^१ नाट्य शास्त्र : सप्तविंशोऽध्याय, पृ. ४८

^२ अमरकोष, १.२.२६

^३ शुद्धं गानं गेयपदम् स्थित पाठ्यं तदुच्यते , साहित्य दर्पण, ६-२१५

^४ कालिनाथ (टीका) संगीत रत्नाकर, खण्ड १, पृ. ६

^५ डॉ. गणेश खरे : आधुनिक प्रगीत काव्य, पृ. १९-२०

किया गया है , पर तात्विक रूप से उसके स्वरूप-निर्धारण की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । हिन्दी गीतिकाव्य का उन्नत और परिष्कृत रूप प्रसाद में ही युगोपरान्त अपने नई शैली के छायावादी गीतों द्वारा प्रस्तुत किया था । गीतिकाव्य साहित्य एवं संगीत का सन्तुलन समावेश करनेवाले वह आधुनिक युग के कवि थे ।^१

गीतिकाव्य विषयक पाश्चात्य विश्लेषण :

पश्चिम में गीतिकाव्य का पर्याप्त तात्विक विवेचन हुआ है, किन्तु 'लिरिक' के मूलस्वरूप से अभिन्न होने के लिए उसकी ग्रीक व्युत्पत्ति को जानना भी नितान्त आवश्यक है । हिन्दी गीतिकाव्य शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'लिरिक' (Lyric) है । लिरिक शब्द की व्युत्पत्ति 'लायर' (Lyre) नामक वाद्ययंत्र से हुई और इसी वाद्ययन्त्र के सहारे जिन गीतों का गान हुआ उन्हें लिरिक की संज्ञा दी गयी । अंग्रेजी लायर ग्रीक शब्द 'लूरा' (Lura) नामक वाद्ययंत्र से हुई । इसी वाद्ययन्त्र के सहारे जिन गीतों का गान हुआ उन्हें लिरिक की संज्ञा दी गयी । अंग्रेजी लायर ग्रीक शब्द 'लूरा' (Lura) से बनाया गया है । ' लूरा' एक प्रकार का अतिप्राचीन ग्रीक तन्त्रीवाद्य था जिसके सहारे गाये जाने वालों गीतों की संज्ञा उस युग में थी । लूरिकोस' (Lurikos) अंग्रेजी में आकर 'लिरिक' हो गया ।

गीतों का विभाजन ग्रीक मनीषियों ने दो रूपों में किया है । (१) 'कोरिक' (Choric) अर्थात् समवेत गीत जिनका गान समूह द्वारा होता था; और (२) मेलिक (Melic) वे गीत जो लायर नामक वाद्ययंत्र पर अकेले गाये जाने के लिए लिखे गये ।

^१ राजनाथ शर्मा : कामायनी : आलोचनात्मक अध्ययन ।

‘मेलिक’ या ‘लूरा’ के नाम पर ‘लूरीकोस’ कहा गया है ।^१ मेलिक गीतों में लोस्वियन गीत है । जो वाद्ययन्त्रों के साथ संगीतिक स्वर में एक ही कवि द्वारा गाये जाते थे । इनमें वैयक्तिक भावोद्रेको की अभिव्यंजना प्रधान थी । ग्रीक काव्य में यह रूप अपने शिल्प विधान में शीर्षस्थ था ।^२ क्रमशः वैयक्तिकता के उत्थान के साथ काव्य का यह स्वरूप अत्यधिक आत्माभिव्यक्ति होता गया और इसी आत्मनिष्ठता में उसकी विशेषता समझी जाने लगी । आदिकालीन गीतों में लायर नितान्त आवश्यक माना जाता था किन्तु ‘रोमांटिक रिवाइवल’ तक पहुँचते-पहुँचते यहाँ तक कहा जाने लगा कि गीतिकाव्य में संगीत की अनिवार्यता नहीं । वस्तुतः लायर जिसके नाम पर लिरिक का उद्भव हुआ, उसे पीछे छोड़ लिरिक बहुत आगे बढ़ जाता है और अब उसका लायर से कोई सम्बन्ध तक नहीं है जिनका नाम समूह को उत्तेजित करने के लिए होता था ।

अंग्रेजी काव्य में गीतिकाव्य का अविर्भाव चौदहवीं शती के अन्तिम तथा पन्द्रहवीं शती के प्रारम्भिक चरण में हुआ है ।^३ आंग्ल समीक्षकों ने भी आरम्भिक तीन-चार शताब्दियों तक इस काव्य रूप पर कोई ध्यान नहीं दिया । विलियम वेब मे सन् १५८६ में पद्य को अग्रलिखित चार विभागों में विभाजित किया जिसमें लिरिक भी एक था;

१. हीरोइक (Heroic)
२. एलिजिक (Elegic)
३. आयम्बिक (Iambic) तथा
४. लिरिक (Lyric) ।

^१ Encyclopaedia Britannica, VOL. XVII, P. 177-80

^२ Encyclopaedia Britannica, Vol. XVII, P. 177-80

^३ G. Sainsbury, A First Book of English Literature, P. 7

१९वीं शती तक यह विभाजन मान्य रहा । ' जाफ्राय ' ने अपनी परिभाषा में गीतिकाव्य को काव्य का पर्यायवाची कहकर इसकी इस विशेषता की ओर संकेत किया कि काव्य यदि वस्तुतः काव्य है तो उसका संगीतमय होना आवश्यक है और आत्मनिष्ठा उसका विशिष्ट गुण है । सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) के रचयिता (हीगल) ने जाफ्राय की इस धारणा को और भी स्पष्ट करते हुए मानवात्मा को ही गीतिकाव्य का प्रेरणा क्षेत्र बताते हुए अन्तर्तम के नाना मनोवर्गों की बाह्य अभिव्यंजना को गीतिकाव्य का पर्याय दिया । उसके अनुसार- जब काव्य विषयनिष्ठ होता है तब वह महाकाव्यात्मक और जब विषयनिष्ठ या आत्माभिव्यंजक होता है तब प्रगीतात्मक होता है । व्यक्तिनिष्ठता, सुतीव्र भावोद्रेक और सहज अन्तःप्रेरणा ही गीतिकाव्य का स्वरूप निर्धारित करती है । इस काव्य का एकमात्र लक्ष्य शुद्ध कलात्मक ढंग द्वारा आन्तरिक जीवन के रहस्यों , आशाओं, आह्लादों, वेदनाओं, प्रलापों या उन्मादों का उद्घाटन करना होता है ।^१ अरस्तू तथा हीगल की धारणानुसार गीतिकाव्य, काव्यात्मक एवं व्यक्तिगत शैली में जीवन के आन्तरिक संघर्ष उसकी आशा-निराशा, हर्ष, शोक तथा सुख-दुःखमयी अनुभूतियों के बाह्य अभिव्यंजना है ।

स्वच्छन्दतावादी युग के सभी शीर्षस्थ समीक्षकों ने गीतिकाव्य का तात्त्विक विवेचन किया है । जान ड्रिंकवाटर के रूप में - गीतिकाव्य विशुद्ध काव्यात्मक शक्ति द्वारा उद्भूत ऐसी अभिव्यंजना है जिसके निर्माण में अन्य कोई भी शक्ति सहायक नहीं होती । उसके अनुसार गीतिकाव्य और काव्य परस्पर पर्यायवाची है ।^२ उनका कहने

^१ Encyclopaedia Britannica, Vol. XVII, P. 181

^२ John Drinkwater, The Lyric, P. 64

का तात्पर्य यह है कि वास्तव में गीतिकाव्य ही सच्ची कविता है अथवा कविता का स्वरूप ही गीतिकाव्य होता है । कालरिज की कविता विषयक परिभाषा ही उनकी इस परिभाषा का आधार है जहाँ यह लिखा है-“ कविता श्रेष्ठतम् शब्दों का श्रेष्ठतम् क्रम है ।¹ ट्रिंकवाटर ने गीतिकाव्य के लिए इस परिभाषा को सर्वोपरि माना है । प्रो. भ्रमर के विचार में ज्यों-ज्यों समाज व्यक्तिवादी होता जाता है, त्यों त्यों कविता भी गीतात्मक होती जाती है । क्योंकि वैयक्तिकता गीतिकाव्य की एक मात्र कसौटी है । एफ. टी. पालग्रेव की गीतिकाव्य की परिभाषा भी विचारणीय है । उन्होंने एक ही विचार, एक ही भाव तथा एक ही अवस्था का चित्रण करनेवाली कविता को गीतिकाव्य माना है ।² (Lyrical has been here held essentially to imply that each poem shall turn on same single thought feeling or situation.) बूनेतियर का कथन है - ‘ गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयों में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना व्यक्त करता है ।³

आगल मनीषियों की उपर्युक्त परिभाषाओं के सम्यक् एवं सूक्ष्म अनुशीलन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि प्रायः प्रत्येक चिन्तक ने गीतिकाव्य की किसी तात्त्विक विशेषता को लक्षित करके ही अपनी परिभाषा बनायी है ।

हिन्दी में गीतिकाव्य विषयक विश्लेषण :

हिन्दी काव्य में, विशेषकर मध्ययुगीन काल में गीतिकाव्य का निर्माण विपुल मात्रा में हुआ परन्तु उसके मूल स्वरूप, तत्वादि निर्धारण की ओर विज्ञानों की दृष्टि बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक नहीं गई । सर्वप्रथम श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय

¹ S.T. Coleridge, Poetry : The best words in the best order, Table talk, July 12, 1927

² F.T. Palgrave, Golden Treasury of Songs and Lyrics, Preface, P. I

³ हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ. २९०

का तात्पर्य यह है कि वास्तव में गीतिकाव्य ही सच्ची कविता है अथवा कविता का स्वरूप ही गीतिकाव्य होता है । कालरिज की कविता विषयक परिभाषा ही उनकी इस परिभाषा का आधार है जहाँ यह लिखा है-“ कविता श्रेष्ठतम् शब्दों का श्रेष्ठतम् क्रम है ।^१ डिंकवाटर ने गीतिकाव्य के लिए इस परिभाषा को सर्वोपरि माना है । प्रो. भ्रमर के विचार में ज्यों-ज्यों समाज व्यक्तिवादी होता जाता है , त्यों त्यों कविता भी गीतात्मक होती जाती है । क्योंकि वैयक्तिकता गीतिकाव्य की एक मात्र कसौटी है । एफ. टी. पालग्रेव की गीतिकाव्य की परिभाषा भी विचारणीय है । उन्होंने एक ही विचार, एक ही भाव तथा एक ही अवस्था का चित्रण करनेवाली कविता को गीतिकाव्य माना है ।^२ (Lyrical has been here held essentially to imply that each poem shall turn on same single thought feeling or situation.) बूनेतियर का कथन है - ‘ गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयों में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना व्यक्त करता है ।^३

आगल मनीषियों की उपर्युक्त परिभाषाओं के सम्यक् एवं सूक्ष्म अनुशीलन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि प्रायः प्रत्येक चिन्तक ने गीतिकाव्य की किसी तात्त्विक विशेषता को लक्षित करके ही अपनी परिभाषा बनायी है ।

हिन्दी में गीतिकाव्य विषयक विश्लेषण :

हिन्दी काव्य में , विशेषकर मध्ययुगीन काल में गीतिकाव्य का निर्माण विपुल मात्रा में हुआ परन्तु उसके मूल स्वरूप, तत्वादि निर्धारण की ओर विज्ञानों की दृष्टि

^१ S.T. Coleridge, Poetry : The best words in the best order,' Table talk, July 12, 1927

^२ F.T. Palgrave, Golden Treasury of Songs and Lyrics, Preface, P. 1

^३ हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ. २९०

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक नहीं गई । सर्वप्रथम श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय द्वारा गीतिकाव्य को काव्य की स्वतन्त्र विधा घोषित किये जाने पर प्रायः सभी शिरोमणि आचार्यों का ध्यान गीतिकाव्य की ओर आकृष्ट हुआ और तब इसके मूल तत्वों एवं स्वरूप को विस्तारपूर्वक समीक्षा की गयी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार हमें काव्य के दो स्वरूप देखने को मिलते हैं - अनुकृत या प्रकृत (इमीटेटिव ओर रियलिस्टिक) और अतिरंजित या प्रगीत (एकजेरेटिव और लिरिकल) । कवि की भावुकता की सच्ची झलक वास्तव में प्रथम रूप में मिलती है । काव्य का दूसरा स्वरूप अतिरंजित या प्रगीत वस्तुवर्णन तथा भाव व्यंजना दोनों में पाया जाता है ।^१ छायावादी कला शिल्प प्रथम सौन्दर्योद्घाटक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसका तात्त्विक विश्लेषण सर्वप्रथम विस्तारपूर्वक करके गीतिकाव्य को महत्व प्रदान किया है । उनके अनुसार - 'प्रगीत काव्य में ही कवि का व्यक्तित्वपूर्ण रूप से अभिव्यंजित होता है । कथानक काव्यों में जीवन के भावात्मक संघर्ष तथा चरित्रों की रूपरेखा रहा करती है परन्तु प्रगीत रचना में कविता इन समस्त उपचारों से विरत होकर केवल कविता या भावप्रतिमा बनकर आती है । संगीत के स्वरों की भाँति प्रगीत के शब्द ही अपनी भावना इकाइयों से कविता का निर्माण करते हैं । उनमें शब्द और अर्थ लय और मन्द अथवा रूप और निरूप्य की अभिन्नता स्थापित हो जाती है ।'^२

डॉ. श्याम सुन्दर दास के अनुसार- गीतिकाव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत को अपने अन्तःकरण में ले जाकर उसे अपने भावों से

^१ गोस्वामी तुलसीदास, पृ. ७५-७६

^२ आधुनिक साहित्य, (भूमिका), पृ. २४

रंजित करता है । आत्मभिव्यंजन सम्बन्धी कविता गीतिकाव्य में भी छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावना पूर्ण आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक ही जान पड़ती है । उसमें शब्द की साधना के साथ-साथ स्वर की भी साधना होती है । भावना सुकोमल होती है और एक -एक पद में पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है । कवि उसमें अपने अन्तर्तम को स्पष्ट तथा दृष्टव्य कर देता है । वह अपने अनुभवों एवं भावनाओं से प्रेरित होकर उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति कर देता है ।^१ पं. रामदहिन मिश्र लिखते हैं- जिस गीति कविता में शब्दों की सुन्दर ध्वनि सुकुमार संदर्शन, सरल, सुन्दर तथा मधुर शब्द, कोमल कल्पना, संगीतात्मक छन्द, अनुभूति की विभूति, भावानुकूल भाषा और कलापूर्ण अभिव्यक्ति हो, वह गीति कविता प्रशंसनीय है ।^२ छायावाद की सुमधुर गीतिकोकिला महादेवी वर्मा ने गीतिकाव्य का विशद तात्विक विश्लेषण किया है । हिन्दी साहित्यस में उनकी गीतिकाव्य सम्बन्ध विशेषरूपेण दृष्टव्य है । उनके शब्दों में-सुख-दुःख की भाववेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है ।^३ साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके ।^४

डॉ. रामकुमार वर्मा के दृष्टिकोण में - गीतिकाव्य की रचना अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से ही होती है, उसमें विचारों की एकरूपता रहती है । अतः सफल गीतिकाव्य में यह चार बातें-अत्याभिव्यक्ति विचारों की एकरूपता, संगीत और संक्षिप्तता

^१ साहित्य लोचन, पृ. २१

^२ काव्य दर्पण, पृ. २२५

^३ गंगा प्रसाद पाण्डेय (सं.) महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ. १४१-१४७

^४ दीपशिखा, भूमिका, पृ. २१

होनी आवश्यक है । ^१ रामखेलावन पाण्डेय के मतानुसार- सजीव भाषा में व्यक्ति के आन्तरिक भावों की सक्षम अभिव्यंजना संगीतात्मकता के आग्रह के साथ जिसमें होती है, वह गीतिकाव्य है । उनके अनुसार 'आत्मचेना की जागृति' गीतिकाव्य की अन्तरात्मा है । ^२ मनमोहन गौतम के विचार से- 'शब्द और अर्थ की साधना कविता है । पर जहाँ शब्द और अर्थ स्वयं मूक हो जाते हैं वहाँ उनका दूसरा रूप आरम्भ होने लगता है जिसे हम गान कहते हैं । गान का संस्कृत रूप संगीत है । संगीत का विशिष्ट रूप गीत है । डॉ. अजब सिंह के विचार से- जिस गीति कविता में शब्दों की सुन्दर ध्वनि, सुकुमार संदर्शन, सरल, सुन्दर तथा मधुर शब्द आत्माभिव्यंजना, स्वतः प्रेरित भावतिरेक, प्रगीतात्मकता, भावान्वित एवं प्रभावैक्य, संक्षिप्तता एवं निर्बधता ये सभी गुण हो वह गीतिकाव्य प्रशंसनीय होता है ।

पाश्चात्य एवं भारतीय चिन्तकों की गीतिकाव्य विषयक परिभाषाओं के परिशीलन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी विद्वानों ने, देश-देशान्तरों की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठ गीतिकाव्यस की मूलभूत विशेषताओं को ही अपनी परिभाषाओं का केन्द्र बनाकर उसका लक्षण निर्देश किया है । उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर आधुनिक गीतिकाव्य के मूलतत्त्व क्रमशः इस प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं-

१. आत्माभिव्यंजना २. स्वतः प्रेरित भावातिरेक, ३. प्रगीतात्मकता, ४. भावान्वित एवं प्रभावैक्य, ५. संक्षिप्तता, ६. निर्बधता ।

^१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. ५६

^२ गीतिकाव्य, पृ. १७, ५९

गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ :

भावना एवं कलाशिल्प सम्बन्धी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके बिना गीतिकाव्य की अवस्थिति असम्भव है । गीति के ये अनिवार्य मूलतत्त्व क्रमशः इस प्रकार हैं-

१. आत्माभिव्यंजना
२. स्वतः प्रेरित भावतिरेक,
३. प्रगीतात्मकता,
४. भावान्वित एवं प्रभावैव्य,
५. संक्षिप्तता
६. निर्बधता,

१. आत्माभिव्यंजना :

आत्माभिव्यंजना का सम्बन्ध कविता के भावपक्ष है । यही भाववेशमयी आत्माभिव्यक्ति गीतिकाव्य का सर्वप्रमुख तत्त्व है जिसके बिना गीत की अस्तित्व की कल्पना भी आकाश कुसुमवत् है । कवि के अपने हृदय में आलोड़ित मनोवेगों का आवेशपूर्ण प्रस्फुटन ही गीतिकाव्य के रूप में उद्भूत होता है । कवि की भावनाएँ ही गीतिकाव्य का प्रतिपाद्य विषय है । कवि व्यक्तित्व की अभिव्यंजना के कारण ही उसे स्वानुभूतिनिरूपक कहा जाता है । गीतों के विविध प्रकारों में अनुभूति की निजी रागात्मकता समान रूप से अनुस्यूत रहती है । विषय चाहे आत्मजगत का हो अथवा बहिर्जगत का , गीतिकार सदैव उसे वैयक्तिक ढंग से ही ग्रहण और अभिव्यक्ति करता है । ^१ अनुभूति और अभिव्यक्ति को इसी आत्मनिष्ठ वैयक्तिकता के कारण गीतिकाव्य में संवेदनशीलता और प्रभविष्णुता का संचार होता है । इसी कारण यदि काव्य को

१ महादवी वर्मा : दीपशिखा, भूमिका, पृ. ४०

सम्पूर्ण जीवन के अन्तर्बाह्य का प्रतिबिम्ब कहा जाये तो गीतिकाव्य को केवल अन्तर्तम का ही प्रतिबिम्ब कहा जायेगा । गीतिकाव्य जीवन का समग्र या खण्ड चित्र न होकर उसके कतिपय विशिष्ट क्षणों की सुतीव्र आत्मोन्मुख अभिव्यंजना है । ये विशिष्ट और अत्यल्प क्षण ही अपनी अखण्डता तथा उदात्तता में प्रगीत को अपनी सीमा में असीम बना देते हैं ।^१

गीति काव्य का सम्बन्ध कवि की गहरी रागात्मक अनुभूति से है । रागात्मक आत्मभिव्यंजना से सम्बन्ध होने के कारण गीतिकाव्य में विभिन्न कवियों में व्यक्तित्व की छाप इतनी विविध होती है कि पढ़ते ही हम कवि को पहचान लेते हैं । आत्मभिव्यक्ति के इसी वैशिष्ट्य ने गीतिकाव्य को अन्य काव्य रूपों से स्वतंत्र महत्व प्रदान किया है । अनुभूति के क्षणों की यह ज्वाला विभिन्न कवियों में भिन्न-भिन्न रूप में होती है । वर्ड्सवर्थ में यह शान्त और गम्भीर है, वायरन में तीव्र । पंत का अन्तर्दहन शान्त और मद्धिम है, महादेवी का करुण, मधुर एवं नीरव । दूसरी ओर निराला की अर्न्तज्वाला उद्दाम-वेग वाली है । प्रसाद में तारकातित नीला आकाश की स्निग्ध तरलता विद्यमान है ।

वैसे तो बाह्य निरूपक काव्य में भी कवि अपने से बाहर की जिन वस्तुओं का वर्णन करता है वह भी उसकी स्वानुभूति होती है क्योंकि बाह्य वस्तुओं को भी जैसा वह हृदय में अनुभव करता है उसी रूप में अभिव्यक्ति करता है ।^२ वास्तव में आत्मभिव्यक्ति या अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेप (Projection) तो काव्य और कला मात्र के लिए आवश्यक है किन्तु गीतिकाव्य की विशिष्टता आत्मभिव्यंजन की शैली में निहित

^१ The Philosophy of fine Art , P. 197

^२ रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. ८६

है । सामान्य कवि जहाँ अपनी भावनाओं का परोक्ष रूप में वर्णन करता है वहाँ गीतिकार अपरोक्ष आत्माभिव्यंजना के लिए स्वतंत्र है ।

गीतिकार की आत्माभिव्यक्ति विशिष्ट होते हुए भी विलक्षणता का सर्वथा निषेध करती है । इसी को लक्ष्य कर शुक्ल जी ने कहा है- 'दूसरी ओर जिसे वह स्वानुभूति कहकर प्रकट करती है और वह यदि संसार में किसी की अनुभूति से मेल नहीं खायेगी तो एक कौतिक मात्र होगी काव्य नहीं । ऐसा काव्य और उसका कवि दोनों तमाशा देखने की चीज ठहरेंगे ।' ^१

आत्माभिव्यंजना का गीतिकाव्य में वही स्थान है जो सुरभि का पुष्प में है । आत्माभिव्यंजना की इसी अनिवार्यता को लक्ष्य कर महादेवी वर्मा ने लिखा है- 'गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं । '

स्वतः प्रेरित भावातिरेक :

आवेश के बिना गीत रचना सम्भव नहीं । गीतिकाव्य में निजी भावातिरेक अन्य काव्य रूपों की अपेक्षा अवश्य अधिक होता है इसी कारण वश पाश्चात्य आलोचना ग्रन्थों में गीतिकाव्य की परिभाषा में उसे इस विद्या का अनिवार्य मूलतत्त्व माना गया है । मनोवेग या भावावेश उसकी प्रेरक शक्ति होती है । सहज अन्तः प्रेरणा के तीव्र भावोन्माद में कवि इतना तल्लीन हो जाता है कि उस अवस्था से लिखा बिना उसकी मुक्ति नहीं होती । खाने-पीने की तरह ही लिखना उन क्षणों में कवि की विवशता बन जाती है । जेम्स स्टीफन ने लिखा है कि- " कविता मेरा गला फाड़कर कहती है कि

^१ रामचन्द्र शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ. ८६

बैठो और मुझे लिखो । ”^१ इस उत्तेजित मनोदशा को प्राप्त नहीं किया जा सकता किन्तु कवि जब प्रेरणा की अन्तर्ज्वाला से अभिभूत होता है तो मानों एक प्रकार की स्वप्नावस्था में होता है जब स्वयं उन्मत्त भावनाएँ ही उसकी लेखनी की नोक पर आकर गीत का मधुर कलेवर बन जाती है । महादेवी का कथन है कि- गीत में कवि का भावावेग अत्यन्त संयमित एवं नियंत्रित रूप में ही प्रकट होना चाहिए । तभी वह प्रभावशाली हो सकता है ।^२

स्वतः स्फूर्त भावावेग के इस तत्त्व की महत्ता प्राचीन और पाश्चात्य सभी आचार्यों ने गीतिकाव्य में एक स्वर से स्वीकार किया है । शैली के शब्दों में-काव्य कोई तर्क-शक्ति नहीं जो स्वेच्छापूर्वक काम में लायी जा सके । कोई कवि यह नहीं कह सकता कि मैं कविता रचूँगा, बड़े से बड़ा कवि तो और भी ऐसी बात नहीं कह सकता । रचना करने वाली शक्ति तो भीतर से वैसे ही आती है जैसे फूल का रंग फूल के विकास के साथ-साथ ढलता और बदलता जाता है तथा हमारी चेतन शक्तियों उस अदृश्य प्रभाव का न आना जानती है और न जाना ।^३ फ्रायड ने इस शक्ति का उद्भावना का मूल अचेतन मन को माना है । गीतिकाव्य कवि के आवेगदीप्त, स्वतः प्रेरित क्षणों की कहानी है जिनकी उद्भावना कवि प्रयत्नपूर्वक नहीं कर सकता उसकी प्रेरणा आन्तरिक होने के कारण सहज स्फुरण कब होगा, कब लिखने की प्रेरणा जागृत होगी ? इस विषय में कवि को पहले से कुछ भी ज्ञान नहीं रहता । गीत कवि के आवेगोद्दीप्त क्षणों की वाणी है ।

^१ W.R. Rogers in a Broadcast, B.B.C. May, 1954

^२ महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य, पृ. १४२

^३ P.B. Shalley, A Defence of Poetry.

३. प्रगीतात्मकता :

प्रगीतात्मकता मुख्यतः आत्मपरक एवं व्यक्तिपरक भावना से सिक्त होती है । इसमें अधिकांशतः कवि के स्वयं के विचार एवं भावना का बाहुल्य होता है जो उससे सम्बन्धित है । वह उसके स्वयं के विषय ही होता है । ये अनुभूतियों जिससे गीतिकाव्य सम्बन्धित है वह कवि की है या कवि की स्वयं है । गीतिकाव्य का विषय मुख्यतः कवि की अपनी भावनाएँ समझी जाती है । इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं-

क. आत्मपरकता (Subjectivity)

ख. एक पक्षीय संवेग (Single Emotion)

ग. स्वाभाविकता या सहजता (Spontaneity)

घ. मीठी एवं सुरली भाषा (Sweet and Sonorous Language)

अतः यह कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य में विचार और अनुभूति की अभिव्यंजना प्रथम पुरुष में होती है, जिसमें कवि की भावनाएँ तो प्रधान होती है । इसमें कवि की अनुभूतियों को ही प्रधानता दी जाती है ।^२

लिरिक में गीतितत्व, गीतात्मक अनिवार्य और निर्णायक तत्व है, और रही गेयता, आरम्भ में अनिवार्य और अनन्तर गौण हो गयी । उन्नीसवीं शती के रोमान्टिक कवियों में जब 'सांग' शीर्षक से गीत लिखे तब उनमें भी निर्णायक तत्व गीतात्मकता का था । प्रायः सभी गेय थे । छायावाद के गीतों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है ।^३ स्वच्छन्दतावादी अनुभूति अपनी तीव्रता के कारण गीतात्मक रूपों में अभिव्यक्ति

^२ डॉ. अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों, पृ. ३९

^१ सं. ही. वात्स्यायन आलवाल, प्र.सं., पृ. ९३

^२ डा. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, द्वि.सं., पृ. २९०

होती रही है । स्वच्छन्दतावादी कवि सुख दुःखमय निर्वाध अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए गीतिकाव्य (लिरिल पोयट्री) का दामन पकड़ता है । यह काम सरलता पूर्वक गीति-काव्यों के द्वारा ही सम्भव है । गीतिकाव्य की आत्माभाव है जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक समय गीत में बह जाता है । अतः प्रकृति से ही उसमें हार्दिकता का उपकरण रहता है । सच्चा गीतिकाव्य एक सरल क्षणिक एवं तीव्र मनोवेग का परिणाम होता है ।

‘अन्तर्निहित संगीतात्मकता और तीव्र अनुभूतिपूर्ण स्वानुभूतिमूलकता, ये ही दो गीतिकाव्य के तात्त्विक लक्षण हैं, जो उसकी आत्मा कहे जा सकते हैं । उन्हीं के परिणाम स्वरूप गीति में सहज उद्रेक नवोन्मेष संघः स्फूर्ति, स्वच्छन्दता अनाडम्बर आदि विशेषताएँ आ जाती हैं । फलस्वरूप गीतिकाव्य की आत्मा प्रगीतात्मकता या गेयता ही है । यही प्रगीतात्मकता या गेयता स्वच्छन्दतावादी कवि के लिए अपेक्षित है । स्वच्छन्दता गीतिकाव्य के लिए आवश्यक है ।^१ स्वच्छन्दतावादी कविता में गीतिकाव्य का अन्य गुण प्रगीतात्मकता एवं नाद-सौष्ठव भी है । इसी प्रगीतात्मकता में तन्मय रहने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि मुक्त छन्द के प्रवाह में बहने लगता है । क्योंकि नई विषय की नई अभिव्यंजना भी चाहिए ।

आधुनिक प्रगति केवल वैयक्तिक परिस्थितियों का भावांकन मात्र नहीं है, मात्र परिवेश के बदलने से जीवन का रूप परिवर्तित नहीं होता । मानव जीवन की कुछ परम्पराएँ ऐसी होती हैं जिनमें वह विमुख हो सकता है । उनके प्रति विद्रोह कर

^१ डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, द्वि.सं., पृ. २९०

सकता है, किन्तु उनका उन्मुलन नहीं कर सकता । क्योंकि उसका विवेक इस कार्य को सम्पादित करने की अनुमति नहीं देता । इस प्रकार प्रगीत की परिभाषा से इसकी चेतना को आत्मसात् करने में कई अड़चने सामने आ जाती है । किसी ने भावात्मक पर अधिक बल दिया है, तो किसी ने प्रगीतात्मकता पर तो किसी ने वैयक्तिकता को ही प्रगीत की चेतना स्वीकार किया है । लेकिन आधुनिक प्रगीत के लिए जो कवि-चेतना की अभिव्यक्ति होती है उसमें सामयिक जीवन-बोध से अक्रान्त कवि अपनी चेतना में युग-बोध को भी चित्रित करता है । ऐसी स्थिति में आधुनिक प्रगीत वैयक्तिक एवं सामाजिकता, रागात्मकता व बौद्धिकता, संगीतात्मकता एवं गेयता की एक समन्वित या एकीकृत अभिव्यंजना है ।

४. भावान्विति :

एक गीत में केवल एक भावना या मनः स्थिति का चित्रण होना चाहिए । इनकी विविधता से इनका प्रभाव क्षीण हो जाता है । इस विशेषता के कारण ही गीतियों से प्रभावित पाठक सर्वदा आनन्दित, क्षुब्ध या करुणा विगलित होकर कवि से सहानुभूति प्रकट करता रहता है । सफल गीत में अखण्ड भावना की त्वरित अभिव्यंजना होती है । गीतात्मक आवेश के क्षण कवि के लिए इतने चेतन होते हैं । तथा उसकी चित्तवृत्ति उस समय इतनी अधिक आत्मकेन्द्रित हो उठती है कि एक से अधिक भावनाओं के लिए वहाँ अवकाश नहीं रहता । आवेग और उत्तेजना एक ही मूलभाव का वहन करती है । अन्य भाव यदि आते भी हैं तो नाममात्र को । गीत में एक ही केन्द्रीय भावना बराबर रहती है । अनुभूति की पूर्णता, भावों की पूर्णता पर आश्रित होती है और भावों की पूर्णता उनकी अन्विति पर । भाव अपनी इकाई में ही तीव्र और प्रबलतम हो पाते हैं जिनका संकलित प्रभाव पाठक पर बड़े ही गहरे रूप में

पड़ता है । जो गीत जितना ही प्रभावोत्पादक होता है उसका उतना ही स्थाई प्रभाव मानव हृदय पर पड़ता है ।

५. संक्षिप्तता :

गीत में आकार का प्रश्न बड़े ही महत्व का है । लघुता (Brevity) या संक्षिप्तता गीत का एक ऐसा अंग है जो उसे अन्य कोटि की कविताओं से आकार या कलेवर की दृष्टि से बाह्य रूप में भी सरलता से अलग करके सामान्यतया उसकी पहचान बताता है । सूत्रों एवं सूक्तियों को छोड़कर केवल गीत ही काव्य की एक ऐसी विधा है जिसका आकार अत्यन्त लघु होता है । एडगर एलन 'पो' ने तो यहाँ तक कहा है कि कविता लम्बी होती ही नहीं । उनका आशय कविता से गीतिकाव्य का ही है ।^१

६. निर्बन्धता :

भारतीय काव्यशास्त्रों ने सदैव मुक्तक के अन्तर्गत गीतिकाव्य को परिगणित किया है । इसका कारण उसकी निर्बन्धता नामक विशेषता ही थी । गीतिकाव्य में कवि की आत्मस्य अनुभूति का संक्षिप्त, उदात्त किन्तु निरपेक्षता उसकी उल्लेखनीय विशेषता है । गीत अपनी भाव विभवता में ही, पूर्ण, महान् और एक रूप है; किसी अपर, पूर्वापर, क्रम की अपेक्षा उसे नहीं रहती ।

^१ Edgar Allam Pae, Essays on the Poetics Principles, ' अधिक' से अधिक आधे घण्टे तक कोई कविता अपने सम्पूर्ण आवेग, प्रभाव तथा समष्टि के साथ चल सकती है, इसके पश्चात् वह कविता नहीं रह सकती ।

उपर्युक्त परिभाषाओं एवं मूलतत्त्वों की विवेचना द्वारा निर्देशित गीतिकाव्य के स्वरूप को एक समन्वित रूप में इस प्रकार उल्लेखित किया जा सकता है । कवि के अन्तस्थल में उद्वेलित मनोवेगों की वेगवती अन्तर्धारा जब इतनी आवेश युक्त हो उठती है कि घनघोर तमिग्रा में क्षण भर को कौधने वाले ज्योतिः स्फुलिंग के सदृश, स्वयं ही मानों एक लयात्मक छन्दमयी, सुकुमार पदावली में संगीत की मधुर ध्वन्यात्मकता से अनुरंजित रूपाकार ग्रहण कर लेती है, तब उस काव्यरूप को गीति काव्य की संज्ञा दी जाती है । गीतिकाव्य में कवि के अन्तर्मन की बहुरंगी भावनाएँ ही विषयवस्तु होती है । यहाँ अनुभूति की अभिव्यक्ति रूप में रूपायित होती है । अनुभूति और अभिव्यक्ति की यह एकरूपता अन्य किसी काव्य में इतनी स्पष्टता से लक्षित नहीं की जा सकती । संक्षिप्त आकार वाली ये गीतियाँ अपने प्रभाव में अमृत-सम ही महान है जो अपनी प्रभावक्षमता के विषय में प्रशंसा के एक शब्द की भी उपेक्षा किये बिना स्वयंमेव अपनी प्रभावात्मकता का साक्षात् निदर्शन है । हृदय की उर्वरा भावभूमि से उद्भूत गीतियाँ सीधे पाठक के हृदय को तो छूती है ।

हिन्दी गीतों की संभावनाएँ :

अतीत की भांति भविष्य भी काल के अन्तराल में छिपा रहता है । फर्क इतना है कि अतीत अंधकारमय रहता है भविष्य प्रकाशमय । एक को समझने की आकांक्षा रहता है, दूसरे को जानने की । यूनानी देवता जैनस आँखों की भांति एक पिछे की ओर देखती है, दूसरी आगे की ओर । एक से प्रेरणा मिलती है, दूसरे से आशा का सांचार होता है । चेतना की विश्रामभूमि अतीत एवं भविष्य दोनों ही है । श्रान्त-क्लान्त मानव वर्तमान के संघर्ष की ओर भागता है । अतीत और भविष्य का संयोजक ही तो है वर्तमान । इसलिए वर्तमान का ज्ञानी अतीत की जिज्ञासा और भविष्य

की अनुभूति में लीन रहा करता है । स्वभावतः यह प्रश्न भी उठता है कि आधुनिक हिन्दी गीतों का भविष्य क्या होगा ?

जनता की जिह्वा, कण्ठ और हृदय को झंकृत करने की जितनी सहज शक्ति गीत-काव्य में है, उतनी बहुत कम अन्य साहित्य विधाओं में । इसलिए मानव को आह्लादित और अनुप्राणित करने की इसमें विशिष्ट एवं अशेष क्षमता है और आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो जाति, वर्ग और भौगोलिक सीमाओं में विभाजित खण्डित मानवता को एक रूप कर दे, जो अणु युग की विषय विध्वंस संभावनाओं के भय से त्रस्त मानव समाज को अभयदान देकर आश्वस्त कर सके और जो दुःख संतप्त मन को कुछ क्षण के लिए ही सही, आनन्द विभोर कर दे ।

आज तो सबसे बड़ी दुर्घटना है वह है मानव की अनुभूति की जड़ता, संवेदनाशक्ति का ह्रास । हमारी अनुभूति बुरी तरह भोधी हो गयी है ।^१ इसका प्रमाण यह है कि हम एक विस्फोटक पदार्थ से लाखों व्यक्तियों को मृत्यु का समाचार सुनकर भी बहुत अधिक प्रभावित नहीं होते । इसे सहज भाव से ग्रहण कर दैनिक कार्य में जुट जाते हैं । दूर की आग की लपटों का अनुभव हम नहीं करते जब हमारा घर जलने लगता है, वह विकलता होती है । भविष्य के गीतकारों का प्रधान लक्ष्य भी यही होना चाहिये कि वह ' भोधी कल्पनावृत्ति को पैनी कर सके ।'^२ उद्देश्य होगा मानव को देवता के आसन पर प्रतिष्ठित कर देना ।^३ - सद्वृत्तियों को जागृत करना ।

^१ हमारी साहित्यिक समस्याएँ : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. ५९

^२ वही,

^३ मनुष्य को देवता बनाना ही छन्द का काम है । वही, पृ. ९२-१०३

आज कवि सम्मेलनों के माध्यम से कुछ ऐसे साधारण गीतकार भी यशस्वी बन जाते हैं, जो सुकण्ठ होते हैं । साधारण भावनाओं वाले गीतों को संगीत के पंजों पर उड़ा के ले चलने वाले ये गीतकार जनता को मुग्ध भी कर देते हैं, पर उनका स्वर उनके गीतों पर ऊपर से लदा हुआ होता है । जैसे जैसे जनता का मानसिक स्तर ऊँचा उठता जायेगा, ऐसी रचनाओं का मान घटता जायेगा । कवि सम्मेलनों का जैसा आयोजन भारत में होता है, वैसा विदेशों में बहुत कम होता है । भविष्य के गीतकार के विचारों एवं भावों के संगीत का नियोजन अपने गीतों में करना पड़ेगा । उसका स्वर आत्मा से निकला होगा ; मात्र कण्ठ से नहीं । उसका गीत शब्दों , भावों और लक्ष्यार्थ-व्यंग्यार्थ की झनकार से ओत-प्रोत होगा ।

हिन्दी के महान गीतकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने गीतों के जिस आदर्श रूप का उल्लेख किया है,^१ वह भविष्य के गीतकारों के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं । भविष्य का गीतकार केवल सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों को चितेरा नहीं; आनन्द और आशय की अजस्त्र वर्षा करने वाला होगा । उसके गीत जन-जन के प्राणों को पुलकित करने वाले और विश्वात्मा की मौन रसानुभूति की मुखर झनकार होंगे ।

यदि गीतकाव्य लिखा जाये तो वह ऐसा हो, जिसमें जीवन के अन्तरतम भाग की अभिव्यक्ति हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सामंजस्य रखती हुई प्रकट की जावे । इस अभिव्यक्ति में आशावाद की प्रखर ज्योति होनी चाहिए ।

- विचारदर्शन, पृ. ११२

चतुर्थ अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' का व्यक्ति व्यक्तित्व एवं कृतित्व

“मेरा धन है स्वाधीन कलम” के अमर गायक नेपाली का जीवन स्वाभिमान और अभाव के बीच होने वाले संघर्ष की महागाथा है । यदि कोई डॉ. रामविलास शर्मा नेपाली की जीवन गाथा लिखें तो वह महाकवि निराला के जीवन वृत्त से कम रोचक-रोमांचक न होगा । बेतिया से बम्बई और पेशावर से रतलाम तक फैला उनका जीवन वृत्त इस विशाल भारत भूमि की ही भाँति विस्तृत एवं विविधतापूर्ण है । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने विषय में लिखा तो अवश्य है किन्तु घटनाओं में नहीं प्रतिक्रियाओं में । इसीलिए अभी उनके मरे ३० वर्ष नहीं हुए हैं । और तथ्य या तो विस्मृतियों की धूल तले दबते जा रहे हैं अथवा विवादास्पद बनते जा रहे हैं ।

सामान्यतः हम मानते हैं कि कवि-कर्म के लिए उत्तम अध्ययन, सत्तन् अव्यवस्था और श्रेष्ठ प्रतिभा-ये तीनों अनिवार्य हैं । इन तीनों अंशों में जो कवि जितना ही पारंगत होगा, उसकी कविता उतनी ही श्रेष्ठ होगी । किन्तु हिन्दी साहित्याकाश के नक्षत्रों में नेपाली जी केवल प्रतिभा के ही कवि थे । केवल अपने ‘जीनियस’ के सहारे ही वे वह स्थान प्राप्त कर सके जो सम्भवतः कोई नहीं प्राप्त कर सकता है । अपनी अनुपम प्रतिभा और दुर्दनीय साहस के बल पर ही उन्होंने जो प्रखर ज्योति जलाई, वह एक महान् संघर्ष और बलिदान की कथा है । ‘द्विज की’ के शब्दों में - “जहाँ वे हिन्दी के वर्ड्सवर्थ हैं, वहीं आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के शब्दों में- “ अंग्रेजी के तीन महाकवि मिल्टन, कीट्स और शैली-कविवर नेपाली के रूप में हिन्दी में अवतरित हुए हैं । ” महाप्राण ‘निराला’ महाकवि ‘पंत’, गीतकार बच्चन आदि सभी ने गीतकार

के रूप में श्रेष्ठता से मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है । निर्विवाद रूप से प्रसाद -पन्त,
निराला महादेवी वर्मा के बाद की पीढ़ी के ये सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं ।

जन्म-तिथि :

नेपाली जी की जन्म-तिथि को विवादास्पद बनाने का श्रेय उनके अनुज श्री बम्ब
बहादुर सिंह (मगन जी) को है । पश्चिम चम्पारण जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
बेतियों द्वारा प्रकाशित स्मारिका के अपने लेख में मगन जी ने उनकी जन्म-तिथि
१७नवम्बर, १९११ दी है । बेतिया के तत्कालीन पदाधिकारी श्री अजातशत्रु के नाम
दिनांक १.१०.७५ को लिखे अपने व्यक्तिगत पत्र में भी उन्होंने यही जन्मतिथि दी है ।
किन्तु सन् १९६८ में नेपाली जी के निधन के उपरान्त आगरा की 'युवक' नामक
पत्रिका का नेपाली स्मृति अंक निकला । उसमें मगन जी ने अपने लेख में नेपाली जी
की जन्मतिथि जन्माष्टमी सन् १९११ ई. दी है । हिन्दी साहित्य में कविवर नेपाली को
दर्जनों जन्म तिथियाँ प्रचलित हैं और इन भ्रान्तिपूर्ण तिथियों का प्रयोग सैकड़ों स्थलों पर
हुआ है । इनमें जन्म तिथि, जन्म मास, जन्म वर्ष सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ हैं । वे
सन् १९०२ से सन् १९१६ ई. तक जन्म ग्रहण करते रहे हैं । कुछ यहाँ तिथियाँ
उपस्थित हैं ।

हिन्दी साहित्यकोश भाग-२ में इनका जन्म सन् १९०२ ई. (१९६० वि.) में
बेतियों, चम्पारन में हुआ ।^१ बिहार विश्वविद्यालय में स्वीकृत पुस्तक 'काव्य
कुसुमावली' (सं. डॉ. सुरेन्द्र दीक्षित) में नेपाली का जन्म भी वर्ष १९०२ ई. है ।
'हिमालय (सं. महादेवी वर्मा) रूपाम्बरा (सं. अज्ञेय) तथा बिहार विद्यालय परीक्षा समिति

^१ डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश , भाग-२, पृ. १३८

द्वारा उच्च माध्यमिक परीक्षा के लिए स्वीकृत 'गद्य-पद्य-संग्रह में नेपाली का जन्म वर्ष १९०६ ई.लिखा है । 'युवक' (मासिक पत्रिका) आगरा नेपाली स्मृति अंक अगस्त १९६३ ई.) के पृष्ठ २१ हिमालय ने पुकारा, (ले.नेपाली) के पृष्ठ ५ पर नेपाली की जन्मतिथि २१ अगस्त १९११ ई. लिखी है । 'युवक' (आगरा नेपाली स्मृति अंक) के पृ. ६१ पर नेपाली के अनुज श्री वी.एस. नेपाली (मगन जी) ने नेपाली का जन्म जन्माष्टमी १९११ ई. लिखा है । 'युवक' (आगरा नेपाली स्मृति अंक) के पृष्ठ ८८ पर नेपाली का जन्म १९११ में लिखा गया है । धर्मयुग (साप्ताहिक जून, १९६३ ई.) के पृ. २८ पर नागार्जुन ने अपनी श्रद्धांजली के तथा युवक (आगरा नेपाली स्मृति अंक) के पृ. ८६ पर भी कविवार नेपाली का जन्म वर्ष १९१३ ई. लिखा है । बेतिया राज उच्चगल विद्यालय में उनका प्रवेश पॉचवे वर्ग में हुआ था । प्रवेश पुस्तिका में नेपाली का जन्म दिन १९१३ ई. लिखा हुआ है । प्रवेश करने में उनकी उम्र १२ वर्ष १० माह २ दिन की थी । नेपाली की मृत्यु के पश्चात् उदय (नेपाली मासिक वाराणसी) आयावर्त (पटना) इण्डियन नेशन (पटना) आदि अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में नेपाली की अवस्था ४८ वर्ष (१९१५ ई.) होता है । धर्मयुग (साप्ताहिक, मई ५, १९६३) के पृ. ९ पर नेपाली का जन्म वर्ष १९१५ ई. लिखा है ।

नेपाली के जीवन काल में उनकी जितनी रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं उनमें से 'हिमालय ने पुकारा' छोड़कर किसी में भी उनका जन्म दिन नहीं लिखा गया है । नेपाली इस पुस्तक के प्रचारार्थ बिहार की यात्रा पर निकले थे और इस कार्य को अपूर्ण छोड़कर चले गये । अतः उनके जीवन काल में प्रकाशित उनकी जन्मतिथि ११ अगस्त १९११ लिखी है । नेपाली के जन्म काल में प्रकाशित होने के कारण यह प्रमाणिक जन्म लिखा है ।

इसके समर्थन में कुछ अन्य प्रमाण भी उपस्थित किये जा सकते हैं तथा गोपाल सिंह नेपाली के अनुज श्री बी.एस.नेपाली (मगन जी) ने युवक (आगरा नेपाली स्मृति अंक १९६३ ई.) के पृ. ६ पर लिखा है कि आप माने या न माने नेपाली जी का जन्म बेतिया, चम्पारण (बिहार) जन्माष्टमी की रात को सन् १९११ ई. में हुआ था । नेपाली के अनुज की यह उक्ति अवश्य प्रमाणित है । ११ अगस्त १९११ ई. को जन्माष्टमी संवत् १९६८ गिनती के अनुसार एक ही दिन है । अतः यह तिथि पूर्ण प्रमाणिक है । जन्माष्टमी की रात में जन्म लेने के कारण इनका नाम गोपाल रखा गया था । यह इस तथ्य का समर्थक है । 'नेपाली' के पिता जी तथा नेपाली के बेतिया स्थिति अनेकानेक मित्रों द्वारा समर्थित तिथि भी यही है । इस प्रकार कविवर गोपाल की प्रमाणित जन्म तिथि ११ अगस्त १९११ तदनुसार जन्माष्टमी संवत् १९६८ है । उनका स्वर्गवास ५१ वर्ष ८ माह ६ दिन की आयु में १७ अप्रैल, १९६३ ई. को भागलपुर (बिहार) में हुआ ।

नेपाली ने अपनी उन्तीसवीं वर्ष गॉठ पर १९४० में एक कविता लिखी थी जो इस प्रकार है-

उन्तीस बसंत जवानी के वचपन की आखों में बीते ।

झर रहे नयन के निर्झर, जीवन घट रीते के रीते ।

यह कविता कवि की वर्षगांठ शीर्षक से नेपाली जी के पुस्तक नवीन में संकलित है ।

नेपाली जी का जन्म उस गोरखा परिवार में हुआ था जो अपनी वीरता, स्वाभिमान, ईमानदारी आदि के लिए जगत् प्रसिद्ध है । इनके पिता श्री रेलबहादुर सिंह भारतीय सेना में सर्विस करने के लिए १८६८ ई. में लखनऊ आये थे । पिता श्री

उन्नति करते-करते हवलदार मेजर (१/९ गोरखा राइफल) बने । १९१० ई. श्रीमती सरस्वती देवी के साथ गोरखपुर सैनिक छावनी के प्रसिद्ध कुण्डाघाट सैनिक डिपो में इनका विवाह हुआ । १९१० में ही पति-पत्नी का बेतियों आगमन हुआ । ये लोग राजा जर्बहादुर के समीपी थे और राजा जी की बहू तारा देवी के कारण बेतियों आये थे । तारा देवी "नेपाली रानी महल" नाम से विख्यात अपने भवन में स्थाई रूप से बेतियों में ही रहती थी । इसी महल में नेपाली जी का जन्म हुआ था ।

नेपाली जी के पिता जी सेना में सेवारत थे । प्रथम विश्वयुद्ध तक वे हवलदार मेजर बन चुके थे और फ्रांस में पद स्थापित थे । नेपाली जी की माँ पता नहीं किन परिस्थितियों में , अपने पुत्र को लेकर अपने भाई के साथ वर्मा चली गई और ये दोनों भाई पेशवर एवं देहरादून के सैनिक केन्द्रों में सरकारी संरक्षण में पलते रहे । उस समय नेपाली जी जी उम्र आठ वर्ष एवं छोटे भाई मगन जी की उम्र पोंच वर्ष की थी । १९२३ ई. में विदेश से लौटने पर श्री रेलबहादुर जी ने अपनी पत्नी और पुत्री की बहुत खोज की, किन्तु वे मिली नहीं । अन्ततः उन्होंने १९२३ में ही बेतियों के समीप हरपुरवा-बगही गाँव के श्री टेक बहादुर सिंह की वहन से अपना दूसरा बिहार किया और सेना से पेंशन लेकर बेतियों में ही रहने लगे । नेपाली जी की मृत्यु के लगभग आठ महीने बाद २० दिसम्बर १९६३ को उनका देहान्त बेतिया में हुआ । वे एक बहादुर सैनिक थे और अपनी वीरता के लिए पुरस्कृत भी हुए थे । नेपाली जी की संघर्ष प्रियता, स्वाभिमान और कष्ट सहिष्णुता के मूल में उनका यह पैतृक सैनिक संस्कार है था । कलम पकड़ने के बावजूद अंतिम दिनों में वे राष्ट्रीयता के " वन मैन आर्मी " बन गये थे । सैनिक पिता से मिले संस्कार ने अन्ततः उन्हें सैनिक बना ही दिया । बन्दूक के बदले वाणी की गोली चलाने वाला सैनिक ।

प्रारम्भिक जीवन :

नेपाली जी की प्रारम्भिक जीवन देश के विभिन्न सैनिक केन्द्रों में बीता । वे मुख्यतः पेशावर एवं देहरादून में रहे । सैनिक जीवन की नियमित व्यवस्था एवं मोर्चे पर स्वदेश-विदेश में जहाँ-तहाँ पद स्थापित रहने के कारण पिता को तो बच्चों को दुलारने का कम ही अवसर रहा होगा, फिर भी उनके हार्दिक स्नेह की तरलता से नेपाली -बन्धुओं का पोषण हुआ, इसमें सन्देह नहीं । उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा भी है-

रोने की न पिता की आज्ञा

हंसते-हंसते मरना है ।

इससे उनकी आज्ञाकारिता एवं पिता के प्रति श्रद्धापूर्वक निष्ठा प्रकट होती है । पिता का व्यक्तित्व सदा उन्हें प्रेरणा देता रहा इस बात का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं - " एक दिन बात -बात में पिताजी ने हमें अपनी जॉघ का दाग बतलाया जहाँ उन्हें गोली लगी थी । वह गोली उनको तब लगी थी जब वह काबुल की या और किसी लड़ाई में अपने मोर्चे से आगे बढ़े जा रहे थे । उस समय पिताजी की आँखें अनूठी आभा से चमक उठी थी ओर उनकी हल्की मुस्कान ने जो जलवा दिखाया था, वह दुःख दर्द तक के दिनों में याद आता है तो बड़ा बल मिलता है ।

शिक्षा :

नेपाली जी का प्रारम्भिक जीवन विभिन्न सैनिक केन्द्रों में बीता । इसलिए उनकी शिक्षा बेतरतीब रही । इसका प्रमाण यह है कि १९११ में जन्मे नेपाली १९३२ में मैट्रिक क्लास में पहुँच सके । लगता है १९२३ में जब उनके पिताजी सेना से

अवकाश लेकर बेतियों में स्थाई रूप से रहने लगे तभी उनकी शिक्षा व्यवस्थित रूप से शुरू हो सकी । १९३२ में वे बेतिया राज हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा के लिए प्रेषित नहीं हो सके । स्पष्टतः वे किसी विषय में कमजोर रहे होंगे । उस जमाने में अच्छे स्कूल केवल उन्हीं छात्रों को 'सेन्ट अप' करते थे जो स्कूल द्वारा आयोजित जॉच परीक्षा में या तो सभी विषयों में उत्तीर्ण होते थे या जिनके पास हो जाने के प्रति अध्यापकगण आश्वस्त होते थे । आजकल की तरह धरम-धकेल की स्थिति नहीं थी । नेपाली जी मैट्रिक परीक्षा के लिए प्रेषित नहीं हो सकने के कारण क्षुब्ध तो हुए ही, शिक्षा-परीक्षा के विरोधी भी हो गये फलतः उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी ।

बेतिया राजस्कूल के अपने अध्ययन काल में नेपाली जी का सम्पर्क राजस्कूल के रुचि सम्पन्न शिक्षक श्री महावीर सिंह 'विरान' (वाराणसी जिले के कादिराबाद निवासी) से हुआ, वीरान जी जैसे साहित्यिक गुरु के सान्निध्य में इनकी साहित्यिक प्रतिभा प्रस्फुटित हुई । १९२६ ई. से ही , जबकि नेपाली जी की उम्र केवल १६ वर्ष की थी और मिडल कक्षा के छात्र थे, उन्होंने कविता-रचना प्रारम्भ की । 'हरी घास', 'पीपल', आदि अपनी प्रसिद्ध रचनाएँ उन्होंने बचपन में ही लिखी थी । वैसे तो जीवन-दर्शन, प्रकृति-वर्णन, राष्ट्रीयता आदि इनकी रचनाओं के मुख्य विषय हैं, किन्तु राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखर है । नियमित पढ़ाई बन्द हो जाने के बाद से साहित्य-सृजन ही इनकी मुख्य व्यवसाय बना जो आजीवन चला ।

स्कूल पढ़ाई विशेषतः अंग्रेजी किस्म की पढ़ाई के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण की अनुमान 'रागिनी' को निम्नलिखित टिप्पणी से भी लगाया जा सकता है- "चम्पारन का एक स्कूल । सामने डेस्क पर अँगरेजी की कोई पुस्तक खुली है । वह बतलाती है कि बहादुर लार्ड स्काट लैण्ड का रहने वाला था , मेकाले ने क्लाइव का ऐतिहासिक परिचय

लिखा है , प्रिंस ऑफ वेल्स रोज सुबह उठकर यह कहते हैं, आदि । अपनी दुधमेंही बुद्धि को पांख इन हरफों से बाँध दी, तवियत से कहा कि कहानियों में लग जा और लकड़ी की बेंच पर कोश लेकर स्वयं बैठ गया । आकाश-पाताल की रेखाएँ खींची और पूर्व को पश्चिम से मिलाया । किन्तु रीडरों की कुंजी पढ़कर हमें पढ़ाने वाले मास्टर्स की आँखों से आँखें मिली नहीं । महाकवि शैली तो निर्भीक थे उन्होंने तुफान खड़ा कर दिया था; पर हम चुपचाप अलग हुए । ”

इसमें सन्देह नहीं कि नेपाली का जीवन जिस दिशा में जा रहा था उसके लिए यह शिक्षा और परीक्षा निरर्थक ही थी । यों बाद में भी उन्होंने प्रसाद या निराला की भौंति गहन स्वाध्याय द्वारा अपने को समृद्ध नहीं किया । हाँ, जीवन की खुली किताब का अध्ययन करने में वे पीछे नहीं रहे और इसीलिए उनकी रचनाओं में बुद्धि की ऊँचाई के बदले अनुभव की गहराई अधिक है ।

साहित्य साधना :

नेपाली ने अपनी उम्र के सोलहवें वर्ष से साहित्य-साधना की । निश्चय ही वे इस उम्र में स्कूल के छात्र थे । अपने भीतर निहित कवि को जगाने का श्रेय वे दो तत्वों को देते हैं - देहरादून की प्रकृति और माता-पिता से वियोग । रागिनी के 'स्वर संधान' में वे लिखते हैं- “ यह हरी-हरी दूब की ही महिमा है कि मेरे हाँथ में बन्दूक के बदले लेखनी है । XXXXX माँ और कहीं; पिता जी जर्मनी की लड़ाई में, मैं और मेरा छोटा भाई पेशावर में । छुटपन के इसी विरह ने कविता की तुकबन्दी सिखलाई होगी, ऐसा याद करता हूँ । प्रेरणा जो भी हो, कवि का जो स्वर सन् २७ में फूटा

उसे सन् ६५ में मृत्यु ही बन्द कर सकी । वे अपनी स्वर माधुरी और सहज भाव सम्पदा के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये ।

साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने विधिवत् पदार्पण 'प्रभात' हस्तलिखित मासिक के सम्पादन से प्रारम्भ किया । The Murlī अंग्रेजी मासिक (टाइप की हुई) भी उन्होंने संपादित तथा प्रकाशित की । ये फुटबाल तथा टेनिस के भी अत्यन्त प्रसिद्ध खिलाड़ी थे । बस, साहित्य-सर्जन और खेल, इन्हीं दोनों को आधार बनाकर इनका जीवन चलने लगा । कई भारत प्रसिद्ध टीमों में भी ये कई साल तक खेलते रहे । इनके अनुज 'मगन जी' जब इनसे भी अच्छा खेलने लगे तो फुटबाल खेलना छोड़ दिया । अब केवल कवि-कर्म व्यवसाय ही शेष रहा ।

अपनी प्रचुर प्रतिभा के कारण साहित्यकाश में इनकी ज्योति दिनानुदिन प्रखरतर होती गयी । कवि-सम्मेलनों में इनके काव्य-पाठ की धूम मची रही । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने १९३२ ई. में बड़ी धूमधाम से द्विवेदी अभिनन्दोत्सव काशी में मनाया । उक्त उत्सव में इनकी कविताओं ने इन्हें राष्ट्रीय स्तर के गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित किया । पुनः प्रयाग द्विवेदी मेले में भी जब इन्होंने अपना ललित काव्य पाठ किया तब सम्पूर्ण श्रोता-मण्डली मंत्रमुग्ध हो गयी । प्रयाग के उक्त समारोह में नेपाली जी की मस्त भरी कविताओं को सुनकर पं० दुलारे लाल भार्गव इतने प्रभावित हुए कि वे अपनी मासिक पत्रिका 'सुधा' के सम्पादन विभाग में कार्य करने के लिए नेपाली जी को लखनऊ लिवा लाए । वही नेपाली जी छह-सात महीने महाप्राण 'निराला' के सहचर्य में रहे । 'निराला' जी इन्हें अनुज की तरह मानते थे । इनके प्रथम काव्य 'पंछी' की भूमिका निराला जी ने ही लिखी है । महाकवि पंत ने

अपने 'स्नेह-शब्दों' में इनके द्वितीय काव्य 'उमंग' की भूमिका लिखकर इनके काव्य जीवन के उत्कर्ष की कामना की है ।

नेपाली जी १९३४ ई. में दिल्ली के प्रसिद्ध कथाकार और प्रकाशक श्री ऋषभ चरण जैन के सम्पर्क में आये और दोनों ने मिलकर १९३४ ई. में साहित्यिक 'चित्रपट' का संपादन किया । इन्हीं दिनों नेपाली जी का दिल्ली के श्रेष्ठ हिन्दी लेखकों से सम्पर्क हुआ । १९३५ से १९३७ ई. तक नेपाली जी ने अपने ही प्रधान सम्पादकत्व में रतलाम (मध्य भारती से साप्ताहिक 'रतलाम टाइम्स' प्रकाशित करवाया । इस पत्र पर इन्होंने अपनी निर्भीकता और ईमानदार पत्रकारिता की अमिट छाप छोड़ी है । मध्य-भारत कार्य-काल में इन्होंने अपने अनुपम स्वाभिमान का परिचय दिया था ।

१९३७ ई. में श्री रामबृक्ष बेनीपुरी के आग्रह पर पटना आये और 'योगी' के संपादक श्री ब्रजशंकर वर्मा के साहचर्य में उसके संयुक्त संपादक बने । वहाँ के अपने कार्यकाल में ही नेपाली जी का विवाह कामांड में नेपाल के गुरु-पुरोहित पं. विक्रमराज की कन्या मखना मैया के साथ सम्पन्न हुआ । विवाह के पश्चात् नेपाली अपने गृह नगर बेतिया में रहने के लिए लालायित हो उठे । तत्कालीन बेतिया सब मैनेजरी श्री विपिन बिहारी वर्मा ने उन्हें बुलाकर बेतिया राज प्रेस का मैनेजर बना दिया ।

अब नेपाली जी अपने नये मकान (जो बेतिया सागर पोखरा के उत्तरी किनारे पर था और अब निलाम भी हो चुका है) में सपरिवार रहने लगे । उन्होंने बेतिया में 'कवि-वासर' नामक एक साहित्यिक संस्था की स्थापना की जहाँ प्रति सप्ताह कवि गोष्ठी में बेतिया के कवियों एवं शायरों की जमघटें होती रही और १९४४ ई. तक जबकि वे बम्बई चले गये, सम्पूर्ण बेतिया नगर को इन्होंने साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया था । इनके प्रेरणा-स्वरूप बेतियों में कई अखिल भारतीय कवि

सम्मेलन भी प्रति वर्ष दशहरे के अवसर पर आयोजित हुए । उन सम्मेलनों में भी नेपाली जी ने काव्य पाठ की धूम मचा दी ।

फिल्म जगत् में :

सन् १९४४ ई. में बम्बई के महाकवि कालिदास शताब्दी समारोह में भाग लेने का निमन्त्रण पाकर नेपाली जी प्रेस का भार अपने सहायक पर सौंपकर बम्बई गये । बम्बई में उनकी कविताओं ने ऐसी धूम मचाई कि बम्बई वालों ने उन्हें घर लौटने ही नहीं दिया । उनके काव्य पाठ और गीत कला से प्रभावित होकर 'फिल्मिस्तान' के निर्माता शशिधर मुखर्जी एवं निर्देशक पी.एल. सन्तोषी ने उनसे गीत लेखक के पद पर काम करने का अनुरोध किया । आर्थिक तंगी से लगातार लड़ने वाले नेपाली ने डेढ़ हजार मासिक वेतन पर उक्त पद पर काम करना स्वीकार कर लिया । सन् १९४७ ई. में नेपाली जी ने अपनी पत्नी, बच्चे और अनुज (मगन जी) के साथ बम्बई को अपना निवास बनाया । नेपाली जी के गीतों और उनके व्यक्तित्व के कारण बम्बई के सिनेमा-जगत् में हिन्दी का मान बढ़ा । फिल्म अभिनेत्री नसीम बानू का कहना है कि- " मुझे तो कहा था कि दुनियाँ से सबसे मीठी जुबान उर्दू और फारसी है । इसीलिए इन दोनों भाषाओं को मैंने सीखा भी । लेकिन आज नेपाली जी की कविता सुनकर कहना पड़ता है कि दुनियाँ में सबसे मीठी जुबान हिन्दी है । "

आपकी पहली फिल्म 'मजदूर' थी जिसके गीतों पर १९४५ ई. में बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसियेशन ने सर्वश्रेष्ठ गीतकार का पुरस्कार दिया । नेपाली जी ने लगभग पचास फिल्मों में गीत लिखे हैं । जिनमें कुछ प्रसिद्ध ये हैं- मजदूर, सफर, शिवरात्रि, जयभवानी, नागचंपा, गौरीपूजा आदि ।

बम्बई के निवास-काल में भी उन्होंने अपनी सारस्वत-साधना से मुख नहीं मोड़ा । एक से एक उत्तम गीत-जिसमें दर्शन, राष्ट्रीयता आदि के सार मुखरित हैं- इन्होंने अपने बम्बई निवास काल में ही लिखे जो उनके बाद के काव्य संकलनों - 'नवीन' और हिमालय ने पुकारा में संगृहीत हैं । इस प्रकार १९४४ ई. में लगभग उन्नीस वर्षों तक वे बम्बई फिल्म जगत् में रहे । किन्तु भारत पर चीनी आक्रमण ने उन्हें तिलमिला दिया और वे फिल्म जगत की चकाचौंध को लात मारकर मेजिनी और गैरीवाल्डी की तरह सम्पूर्ण देश को जागृत करने के लिए नगर-नगर घूमते रहे और अपनी कविताओं से सम्पूर्ण राष्ट्र को उद्बोधित करते रहे; राष्ट्रीय सुरक्षा, भावनात्मक एकता एवं जागरण गीतों के स्वरों को मुखरित करते हुए वे सम्पूर्ण देश को ललकारते रहे-

हुआ देश की खातिर जनम है हमारा

कि कवि है, तड़पना करम है हमारा

कि कमजोर पाकर मिटा दे न कोई

इसी से जागना धरम है हमारा ।।

- 'हिमालय ने पुकारा' की कविता 'नजर है नई तो नजारे

पुराने (जुलाई, १९५७ का अंश) ।

मृत्यु :

सन् १९६२ के चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में राष्ट्रीय जन-जागरण का शंख फूंकते हुए नेपाली जी बिहार पहुँचे । भागलपुर के एकवारी नामाक स्थान से कवि सम्मेलन के बाद वे भागलपुर लौट रहे थे । रेल के डिब्बे में उन्हें दिल का दौरा पड़ा । सम्भवतः वहीं अथवा यदि श्री आनन्द शास्त्री का बयान सच है तो उन्हीं की बाहों में

१७ अप्रैल १९६३ को भागलपुर रेलवे स्टेशन के प्लेट फार्म नं. २ पर कवि ने दम तोड़ दिया । उनकी मृत्यु का समाचार सुनते ही भागलपुर के साहित्य प्रेमी जनता उमड़ पड़ी, अपने प्रिय कवि का दर्शन करने के लिए । सूचना मिलने पर राज्य के तत्कालीन मुख्य मंत्री पं. विनोदानन्द झा जी ने राजकीय सम्मान के साथ उनका दाह-संस्कार करने का आदेश दिया । उन्होंने भागलपुर के कलक्टर श्री बी.एन.बसु को आदेश दिया कि वे देश को जगाने के काम में ही हम लोगों के बीच से उठे हैं, इसलिए उनका दाह-संस्कार शहीदी सम्मान के साथ किया जाये । फिर तो जिलाधिकारी ने कवि के पार्थिव शरीर को अपने अधीन कर लिया तथा उसे राष्ट्रीय ध्वज एवं फूल मालाओं से सजा दिया गया । आकाशवाणी से निधन के समाचार प्रसारित होने लगे एवं साहित्यिकों-राजनेताओं के शोक-सन्देश आने लगे । पटना, बम्बई और बेतिया से दूरभाष पर उनके सगे-सम्बन्धियों से सम्पर्क स्थापित किया गया , परन्तु कहीं से किसी के न पहुँचने की स्थिति में १८ अप्रैल १९६३ ई. को मुख्यमंत्री के आदेश से शव यात्रा ९ बजे प्रातः निकली और स्वयं जिलाधिकारी ने पावन गंगातट (बरारी घाट) पर कवि की चिता सजाई और पौंच स्थानीय कवियों- सर्वश्री आनन्द शास्त्री, पं. दामोदर शास्त्री, शारदा प्रसाद 'सैदपुरी', रमेश चन्द्र मिश्र, 'अंगार' और रॉबिन शॉ 'पुष्प' ने समवेत रूप में दिवंगत गीतकार को मुखाग्नि दी । शायद ही संसार के किसी भी साहित्यकार को यह सौभाग्य मिला होगा कि उसकी मुखाग्नि उसके साथी साहित्यकारों ने दी हो । अपने में यह अविस्मरणीय संयोग है ।

कवि के पार्थिव शरीर की राख को अपनी गोद में समेटकर मुक्ति देने का सौभाग्य मिला बरारी घाट की गंगा को । हिमालय का बेटा हिमालय की बेटी की गोद में सोकर अपनी 'भाई-बहन' कविता को साकार कर गया । नेपाली का पार्थिव शरीर

नष्ट हो गया लेकिन उनकी आत्मा आज भी चालीस करोड़ नहीं अस्सी करोड़ भारतीय को पुकार रही है-

आजाद रहा देश तो फिर उम्र बड़ी है ।

मन्दिर भी है, गिरिजा भी है, मस्जिद भी खड़ी है ।

संग्राम बिना जिन्दगी आसूँ की लड़ी है ।

तलवार उठा लो तो बदल जाय नजारा

चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा ।।”

विपन्नता के सहचर :

नेपाली के व्यक्तित्व का शतदल विपन्नता के बीच में खिला । गरीबी उनकी सहचर प्रिया रही । उनकी निर्धनता का एक चित्रण उनकी ‘रागिनी’ की ‘पावस और कवि’ नामक कविता में स्पष्टतः चित्रित है-

गाता है कवि गान, बूँद पर

बूँद टीन से चूती है

नभ से छत पर छत से आकर

कवि के हिय को छूती है ।” (जून, १९३४ ई.)

प्रायः सैनिक केन्द्रों में पले नेपाली का बचपन कैसे बीता यह तो नहीं कहा जा सकता लेकिन युवा नेपाली को सन् ३२-३३ में चम्पारण प्रसिद्ध शिकार-साहित्य लेखक महन्त घनाराजपुरी ने जिस रूप में देखा वह उन्हीं के शब्दों में सुनने लायक है- “उन्हें गरीब सुन रखा था । किन्तु उनकी निर्धनता इस कोटि की निर्धनता है ; इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी । + + + वे सिर्फ एक लंगोटा पहने हुए थे और उनकी आखें झुकी हुई थी । + + + अलगनी पर एक फटी कमीज और एक मैली

धोती लटकी हुई थी और कोठरी में कुछ पुस्तकें बिखरी पड़ी थी । बिछावन में दरी का एक फटा हुआ टुकड़ा था, जिस पर शायद तकिये के काम के लिए कुछ पुस्तकें पड़ी हुई थी । एक पीतल का गिलास भी काने में पड़ा हुआ था । कोठरी में कुल इतने ही सामान थे । " नेपाली इस गरीबी से मुक्ति के लिए लखनऊ, दिल्ली, रतलाम, पटना सर्वत्र दौड़ते रहे । अन्त में बम्बई की राह पकड़ी । वहाँ उन्होंने ऐयाशी चाहे जो की लेकिन गरीबी से पिण्ड नहीं छुड़ा सके । तभी तो उनकी मृत्यु के बाद अर्थाभाव के कारण उनकी पत्नी और बच्चे भागलपुर नहीं पहुँच सके । उनके जीवन काल में ही बेतिया के एक साहूकार ने पन्द्रह सौ रुपये के लिए उनका दस हजार का मकान निलाम करा लिया । पाण्डेय आशुतोष को लिखे एक पत्र में उन्होंने इसका उल्लेख किया है । हिन्दी के इस महान गीतकार का घर मात्र पन्द्रह सौ रुपये के लिए निलाम कराकर उन्हें बेघर बना देनेवाले उस अर्थदस्यु का नाम मैं नहीं लेना चाहता । बुद्ध के साथ अंगुलिमाल अथवा गान्धी के साथ गोड्से की तरह नेपाली के साथ उसका नामोल्लेख कर मैं उस अर्थदस्यु को अमर नहीं होने दूँगा ।

विपन्नता के प्रति अपनी भावना का उल्लेख करते हुए रागिनी के स्वर-संधान में नेपाली जी ने लिखा है- " गरीबी बड़ी प्यारी चीज है । वह भी लड़कपन से बुढ़ापे में नहीं भरी जवानी में । लड़कपन में यह संगिनी मिली तो बाल-हठ कुंठित हो जाता है; बुढ़ापे में आई तो सर्द आहें जारी होती है, पर वही यौवन में मिल गई तो भरे हुए सीने की कठोर परीक्षा होती है । इसलिए मामला शीघ्र समाप्त नहीं होता । इसी राह के हम मुसाफिर हैं । निश्चय ही नेपाली गरीबी की नागिन से खेलते रहे । यह भुजंगिनी उनसे आँख-मिचौनी खेलती रही और ये अक्खड़पन भरे ठहाकों से उसके त्रास की घटा विदीर्ण करते रहे ।

स्वाधीन व्यक्तित्व :

गरीबी में पहले के बावजूद नेपाली ने अपने को झुकने या टूटने नहीं दिया । अपने अक्खड़ स्वभाव, सदा प्रसन्न व्यक्तित्व, मस्ती और हाजीर जवाबी के लिए वे प्रख्यात थे । पंछी की भूमिका लेखक की दृष्टि में "कविवर स्वभाव से सहज, सरल एवं सरस होकर परम स्वाभिमानी थे । उनमें एक सैलानी मस्ती और फक्कड़पन था । उनकी हाजिर जवाबी प्रसिद्ध थी । डॉ. गोपाल प्रसाद 'वंशी' की नजर में "नेपाली जी शुरू से ही दवंग, स्वाभिमानी, जी-हुजूरी से अलग और किसी का रोब बर्दास्त न करने वाले थे । " इन पंक्तियों के लेखक का भी यही अनुभव है कि नेपाली में बीरबल जोसी हाजिर जवाबी और बच्चों जैसी सरलता थी । अपने स्वाभिमान पर कोई आघात सहना उनके स्वभाव में नहीं था । कदाचित् इसलिए वे जनता के चहेते तो बने लेकिन सत्ताधारी साहित्यकारों की जमात में सम्मिलित नहीं हो सके । गरीबी लोगों को प्रायः मुलायम और समझौतावादी बना देती है । लेकिन नेपाली के पाषाणी व्यक्तित्व को वह मुलायम नहीं बना सकी । उन्हें अपने स्वाधीन कलम पर हमेशा गर्व रहा-

तुझ-सा लहरों में बह लेता -

तो मैं भी सत्ता गह लेता

इमान बेचता चलता तो

मैं भी महलों में रह लेता ।

वे ईमान नहीं बेच सके , दूसरों के संकेतों पर नहीं चल सके । इसलिए सत्ता उनके लिए विमाता बनी रही । वे राजकवि या राष्ट्रकवि बनने के बदले जनकवि

बनकर रह गये । अपने लेखन के सम्बन्ध में उन्होंने साफ लिखा है-

लिखता हूँ अपनी मर्जी से

बचता हूँ कैची-दर्जी से

आदत न रही कुछ लिखने की

निन्दा-वन्दन खुदगर्जी से ।

कोई छेड़े तो तन जाती, बन जाती है संगीन कलम ।

नेपाली के निधन के बाद युवक (आगरा) किरण (हाजीपुर) उदय (वाराणसी) आर्यावर्त (पटना) धर्मयुग (बम्बई) साप्ताहिक हिन्दुस्तान (दिल्ली) आदि अनेक पाठ्यक्रमों में उनकी रचनाएँ पढ़ाई जा रही हैं तथा अनेक शोधार्थी उन पर शोध कर चुके हैं या कर रहे हैं । यह प्रमाणित करता है कि नेपाली का काव्य सोना है जो समय से मेंजकर अधिकाधिक चमकता जा रहा है । नेपाली को भले ही शिकायत रही हो कि-

सावन भर नाचा मोर मगर

बौछार मिली बादल न मिला ।

मगर जनता की शिकायत तो यही रही कि-

थका कब जमाना तुम्हें सुनते- सुनते

तुम्हीं सो गये दास्ता कहते -कहते ।।

अतः जब तक लोक जीवन में कविता की गंगा प्रवाहित रहेगी तब तक नेपाली जी की कविता अमर रहेगी । उनका साहित्य समय की शिक्षा पर अमर हस्ताक्षर है । उनका दर्द उनकी करुणा, उनका आत्म विश्वास और हृदय की अनुगूँज के प्रतीक

स्वरूप उनकी निम्नलिखित पंक्तियों के साथ कीर्ति शेष, उस अमर गीतकार के प्रति हमारे असंख्य श्रद्धासुमन समर्पित है-

तुमने मेरा प्रेम न देखा
देखी है नादानी केवल
मैं न तुम्हारे लिए रहा अब
मेरी रही कहानी केवल । ”

(नवीन के अंतर्गत संकलित “ तुमने मेरा दर्द न जाना”, कविता से)

- गोपाल सिंह 'नेपाली' जीवन और साहित्य-डॉ. बलराम, पृ. २०-२९
- प्रकाशक : विद्यार्थी साहित्य संगम, बेतिया, बिहार
- संस्करण : प्रथम अगस्त, १९८३
- स्वाधीन कलम : अवधेश्वर 'अरुण' एवं रामप्रवेश सिंह, पृ. १-१०
- प्रकाशक : हंसराज प्रकाशन, मुजफ्फरपुर
- प्रथम संस्करण, १९८२

कृतित्व :

नेपाली छायावादोत्तर काव्य-युग के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं । इस युग की विशेषता यह रही कि इसके अधिकांश कवियों ने कविता को जीवन की सहजता और यथार्थ से जोड़ने का प्रयास किया । उनकी कविता की शिल्प-संरचना जैसी भी रही हो, किन्तु उनके मूल में यौवन, मस्ती, प्रकृति-प्रेम, राष्ट्रीयता और मानववादी चेतना की प्रवलता है । नवीन हो अथवा दिनकर, नेपाली हो अथवा बच्चन, नरेन्द्र हो अथवा जानकी बल्लभ; इन सभी की रचनाओं में इन भावभूमियों का समावेश मिलता है । अलहड़ता और अनगढ़ता, द्वन्द्व और भावाकुलता, उमंग और विद्रोह की भावना इनमें कहीं तीव्र और कहीं संयमित रूप में व्यक्त है ।

नेपाली का रचनाकाल सन् १९२९ ई. से प्रारम्भ हो जाता है । इतनी कम शिक्षा होने पर भी काव्य रचना का यह अनवरत एवं सुन्दर प्रयास सिद्ध करता है कि इनमें प्रतिभा का सहज और सशक्त प्रकाश था, जो वयोविकास के साथ समृद्ध होता गया । जुलाई १९३४ ई. में प्रकाशित 'उमंग' इनकी प्रथम काव्यकृति है । 'उमंग' वस्तुतः कवि के तरंगित यौवन की उमंग है । भावों की मादकता, मोहकता, आन्तरिक महत्वाकांक्षा एवं रोमानीयन से आवेष्टित इस संग्रह की रचना उस समय बड़ी प्रत्यग्र एवं नव्यता-मण्डित थी । इनमें काव्य प्रतिभा का सहज उन्मेष, कैशोर का नूतन पावित्र्य एवं हृदय का मुक्त-मधुर प्रवाह था । भाषा इनका अत्यन्त मधुर सरस, प्रांजल एवं कोमल है :

“ यह घास नहीं है, पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस ”

जैसी पत्तियों प्रकृति के प्रति कवि के सहज तादात्म्य एवं एकात्म उल्लास की परिचायिका तथा छायावाद की उद्यानमुखी प्रकृति-सज्जा से विलग, उसके मुक्त सहज

एवं नैसर्गिक स्वरूप के प्रति अनुराग की सन्देश-वाहिनी है । बीच-बीच में आनेवाले मधुरता मण्डित तद्भव शब्द रूप 'नेपाली' जी की भाषा की निजी विशेषता है ।

सन् १९३४ में प्रकाशित 'पंछी' उनका दूसरा काव्य-संकलन है । जिस प्रकार 'उमंग' की हरी घास, पीपल, पंक्षी, सरिता आदि कविताएँ प्रमुख रूप से कवि के मानस का प्रतिनिधित्व करती है उसी प्रकार 'पंछी' संग्रह में कवि के प्रभात काल की 'पन्द्रहमिनटी' रचनाओं का संकलन हुआ है । सन् १९३५ ई. में तीसरा स्पष्ट काव्य-संकलन 'रागिनी' नाम से प्रकाश में आया । काव्य ने प्रेम के भारी रहस्य केन्द्र को छू लिया और उसकी वाणी को पहचान गया । 'टुकड़ी', 'विद्रोही,' आदि रचनाएँ उसकी प्रगति-मनस्कता की भी द्योतिका है । 'नीलिमा' संग्रह में कवि का मानस-क्षितिज और भाव-प्रवाह बदला है । 'दार्जिलिंग' की बूँदाबूदी, 'गंगा किनारे' जैसी रचनाएँ प्रमुख हैं । इनमें कवि के छवि-चित्र अत्यन्त मधुर एवं पूर्ण हैं ।

सन् १९४२ ई. में प्रकाशित 'पचमी' काव्य संग्रह साहित्य के देवता के मंदिर में कवि की पोंचवी पुकार है । इसकी विशाल भारत एवं राष्ट्रीयतापरक रचनाएँ उच्च मानसिक भूमि के परिचायिका हैं । 'सावन' शीर्षक १०१ रुबाइयों में लिखित और सुन्दर उपमाओं से सुसज्जित रचना 'पंत' जी की बादल कविता की भाँति सब ही वस्तु के विविध दर्शन एवं पूर्ण परिहास का प्रमाण है । 'कल्पना', 'ओंचल', 'नवीन,' रिमझिम और 'हमारी राष्ट्रवीणा' इनकी अन्य पुस्तकें हैं ।^१

नेपाली की प्रथम काव्य कृति 'पंछी' एक प्रतीक-काव्य की श्रेणी में आती है । यह दो पंछियों की प्रणय-कथा को लेकर चली है । इसके प्रसंग जो सबसे आकर्षित

^१ हिन्दी साहित्य कोश : भाग-२ , धीरेन्द्र वर्मा, पृ. १३८

करते हैं, वे हैं - जीवन में सर्वदा प्रत्यक्ष होने वाले विरह और मिलन , हर्ष और विषाद, सुख और दुख का वर्णन । वनराजा और वनरानी दोनों मानव प्राणी के प्रतीक हैं और उनकी गाथा मानव-जीवन की शाश्वत गाथा है । 'पंछी' में प्रेम का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है । इसकी विशेषता यह है कि इसमें कथात्मक तत्व कम है । इसमें स्मृति चित्र है और कवि ने इसमें भावात्मक संवर्गों को चित्रों में बोंध दिया है । संयोग और वियोग के मार्मिक चित्र खींचकर कवि ने इसे काफी हृदय स्पर्शी बना दिया है ।

'पंछी' के बाद 'उमंग' नेपाली की दूसरी काव्य-कृति है । इस काव्य कृति का जो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य पाठकों को आकर्षित करता है वह है चिन्तन के बोध का अभाव । डॉ. रामप्रवेश सिंह ने इसमें प्रज्ञावान व्यक्ति की प्रवीणशीलता के दर्शन किये हैं । किन्तु मेरी दृष्टि में इसमें सिर्फ अनुमति के विविध आयाम हैं । यो तो नेपाली की सभी रचनाओं में सौन्दर्य, प्रणय, प्रकृति, राष्ट्रीयता आदि तत्व मिलते हैं किन्तु इस संग्रह की भिन्नता का आधार है- करुणा । कवि ने लिखा है-

“ पीड़ित मन की थोड़ी सी पीड़ा हरती है करुणा

इस जग में बोझ दुखी का कुछ कम करती है करुणा

अन्तर की गागर इतना छल-छल भरती है करुणा

हल्का सा धक्का लगते, दुःग से झरती है करुणा ।

'रागिनी' नेपाली की तीसरी काव्य कृति है । इसमें भी अनुभूति की ही प्रधानता है । यहाँ कवि आत्मपरक होकर भी जीवन की संभावनाओं और आशाओं से रहित नहीं है । यौवन, राष्ट्रीयता, प्रकृति, सौन्दर्य, अनादि कवि के परिचित विषयों के अतिरिक्त इसमें विज्ञासा, अतृप्ति, करुणा और विवशता भी है । रागों के संयोजन और

भावों की प्रेषणीयता की दृष्टि से रागिनी नेपाली की महत्वपूर्ण कृति है । देश-दहन, विद्रोही, पिया के भेद, भाई-बहन आदि इस संग्रह की प्रभावशाली कविताएँ हैं ।

‘नीलिमा’ चौथी कृति है जो कवि के भावात्मक विकास और चिंतन विषयक प्रौढ़ता का द्योतक है । रचनाओं के प्रकार और विचार की दृष्टि से उमंग और रागिनी में बहुत अन्तर नहीं है और न ही असमानता ही । लेकिन नीलिमा काफी आगे की रचना लगती है । इसमें अन्य भावों के अतिरिक्त यौवन की बाढ़ और प्रणय की तरंगों का आधिक्य है । हरी घास, पथिक, जंजीर, जवानी आदि आदि इस संग्रह की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं । डॉ. रामप्रवेश सिंह के शब्दों में नीलिमा के कवि में अजीब प्रकार का फक्कड़पन एवं अनोखी मस्ती देखने को मिलती है । फिर भी कवि में विश्वास इतना है कि वह चाहे तो अपनी कर्मठ भुजाओं से एक ऐसी लकीर खींच दे जो विधि के विधान को भी विच्छिन्न करा दे ।” कवि की यह गर्वोक्ति है-

मैं, रही हूँ, मेरे आगे खिंची हुई है एक लकीर

मैं नाविक हूँ, मेरे आगे गरज रहा सागर गम्भीर

बड़े प्रेम से दीप संजोकर गाता हूँ जीवन के गीत

मैं विद्रोही मेरे आगे झलक रही मेरी जंजीर ।”

नेपाली की पाँचवी कृति है- नवीन । प्रौढ़ दृष्टि, गम्भीर चिन्तन एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के कारण यह नेपाली की उपलब्धियों का मील स्तम्भ है । यहाँ नेपाली की प्रतिभा प्रगीतात्मक हो गयी है । कवि के जीवन के विभिन्न रूपों और स्थितियों को प्रगतिशील दृष्टि से देखा है और उसकी दृष्टि में जो मंगलदीप झलमलाएँ हैं उसी का चित्र नवीन में है । इस संग्रह में यौवन, प्रेम, मानव, प्रकृति, अध्यात्म, राष्ट्रीयता, सामाजिकता आदि विषयों से सम्बन्धित गीत है । पहाड़ी कोयल, अभागिन जल रहा

गोंव, दुखिया, नौजवान की मौत पर, कल्पना करो नवीन, भारत माता स्वतंत्रता का दीपक आदि कविताएँ काफी प्रौढ़ हैं ।

‘हिमालय ने पुकारा’ नेपाली के काव्य मंदिर का कलश है, शीर्ष है । उन्हें जन कवि बनाने का श्रेय हिमालय ने पुकारा को ही है । उमंग के नेपाली प्रकृति और प्रेम के भाव-मुग्ध कवि है । नीलिमा में नेपाली प्रेम के पुजारी हैं । रागिनी में जीवन और जगत दोनों का संयोग है । नवीन में नूतन कल्पना और रचनाधर्मी व्यक्तित्व का उदात्त रूप है । किन्तु हिमालय ने पुकारा में इन सब का सार तत्व अत्यन्त आस्था के समय ओजस्वी वाणी में प्रकट हुआ है । इसमें कवि की दृढ़ता स्पष्टवादिता और प्रखर दूरदर्शिता के दर्शन होते हैं । नेपाली यहाँ ससचमुच “वन में आर्मी” हैं । कवि ने १९५९ में चीनी आक्रमण के संभावना व्यक्त की थी, वह १९६३ में फलित हुई । यह हिमालय की पुकार नहीं, कवि की पुकार है । नेपाली ने उस समय राष्ट्र-रक्षा के लिए घर-घर अलख जगाई थी-

भारत के प्यारे जागो, सोय सितारे जागो ।

वैरी दुआरे आया, तुम सिर उतारो जागो ।”

देशहित के लिए वे गोंधी की अहिंसा नीति और नेहरू के पंचशील को निन्दित करने में भी नहीं हिचकते हैं ।

‘छायावाद’ के ‘तृतीय-उत्थान’ के मानववादी-स्वच्छन्दतावादी कवियों ‘नेपाली’ का प्रमुख एवं अविस्मरणीय स्थान है । नरेन्द्र शर्मा के मानववाद को ‘नेपाली’ ने प्रकृति की सहज सुषमा का मधुरा-लोक और प्रेम की तरह हार्दिकता प्रदान कर लोक निकटतर बनाया है । प्रकृति के सहज अनगढ़ स्वरूप के प्रति जो तन्मयता ‘नेपाली’ की रचनाओं में है, वह इस उत्थान के कवियों में भी दुर्लभ है । गुरुभक्त सिंह ‘भक्त’

ने प्रकृति के जिस नैसर्गिक एवं ग्राम्य सौन्दर्य का अनावरण किया था, वह नेपाली के गीतों में रस-सिद्धान्त और चुने रूप में चित्रित हुआ है । कुछ ही सीधे-सादे और मधुर शब्दों की रेखाओं में सारे वातावरण के माधुर्य को बोंध लेने की इनमें अद्भुत क्षमता है । मस्ती, निर्भीकता एवं तरंगिता का जो रोमानी उल्लास इन पंक्तियों में संकेतित है वह नेपाली के उच्छल व्यक्तित्व की सहज श्री है-^१

गंगा यमुना की रेती में सुन्दर महल बनाना हो

कालिन्दी के हरित कुल में रुठा हृदय मनाना हो ।

तो चुपचाप निकलकर परदेसी, भूल भटका जा रहा कहीं ।

नगे पग चलने वालों को नद-नदी अथाह नहीं ।

नेपाली जनकवि हैं और वे जनता की दृष्टि में सदैव तक जन कवि के रूप में प्रतिष्ठित रहेंगे, इस दृष्टि से नेपाली के साहित्य पर यदि नई दृष्टि से विचार किया जाय और कवि-चरित्र के काव्य-चरित्र के रूप में देखा जाय तो आज भी अनेक तथ्य ऐसे हैं जो एक ईमानदार कवि के रूप में नेपाली को प्रतिष्ठित कर सकते हैं ।

रसपूर्ण भाषा, लय, संगीतात्मक छन्द, सहज कोमल प्रतीक, काठिन्य से सर्वथा परे रहने वाले पद-विन्यास, सुकुमार भाव-शैल्या, सौन्दर्यमयी वृत्ति, श्रृंगारिक से अधिक रोमानी भावावेश, आन्तरिक स्फुरण, मन की सहज प्रेरणा और कल्पना-प्रवण यौवन की उष्मता के लिए 'नेपाली' का गीतकार अविस्मरणीय रहेगा ।

^१ हिन्दी साहित्य कोश, भाग-२, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. १३८

सम्पादन :

साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने विधिवत पदार्पण 'प्रभात' हस्तलिखित मासिक के सम्पादन से प्रारम्भ किया । 'The Murali' अंग्रेजी मासिक (टाइप की हुई) भी इन्होंने सम्पादित तथा प्रकाशित की । उनकी काव्य प्रतिभा पर रीझकर 'सुधा' सम्पादक श्री दुलारे लाल भार्गव उन्हें 'सुधा' के सम्पादकीय विभाग में ले गये । वहीं नेपाली जी छह-सात महीने महाप्राण 'निराला' के सहचर्य में रहे ।

नेपाली जी १९३४ ई. में दिल्ली के प्रसिद्ध कथाकर और प्रकाशक श्री ऋषभ चरण जैन के सम्पर्क में आये और दोनों ने मिलकर १९३४ ई. में साप्ताहिक 'चित्रपट' का सम्पादन किया । इन्हीं दिनों नेपाली जी का दिल्ली के श्रेष्ठ हिन्दी लेखकों से हुआ । १९३५ से १९३७ ई. तक नेपाली जी ने अपने ही प्रधान सम्पादकत्व में रतलाम (मध्यभारत) से साप्ताहिक 'रतलाम टाइम्स' प्रकाशित करवाया । इस पत्र में इन्होंने अपनी निर्भीकता और ईमानदार पत्रकारिता का अमिट छाप छोड़ी है । मध्य भारत कार्यकाल में इन्होंने अपने अनुपम स्वाभिमान का परिचय दिया था । सन् १९३७ में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी जी के आग्रह पर पटना आये और 'योगी' के सम्पादक श्री ब्रजशंकर वर्मा के सहचर्य में उसके संयुक्त सम्पादक बने । 'योगी' में वे बाबा बौद्धमदास के नाम से "गोल घर के मुँडेर से" स्तम्भ लिखते थे ।

अध्याय-पाँच

गीतिकाव्य के विकास में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान

कवि का मूलधर्म कभी कोई 'वाद' मानकर नहीं चलता । सृजन की कोई सीमा नहीं होती । मान्यता अपने आप में शाश्वत सत्य है । कविता का जन्म इन्हीं तीन परिस्थितियों के बीच होता है । बोध का समर्थक कवि इसे ही यथार्थ मानता है । उसकी समस्त रचनाएँ इसके इर्द गिर्द ही परिक्रमा करती है और ऐसी स्थिति को हम नेतृत्वकारी अथवा प्रवर्तक की संज्ञा से आभूषित करते हैं । गोपाल सिंह 'नेपाली' हिन्दी काव्य के ऐसे ही कवि थे जो आज भी जिन्दा हैं । यद्यपि उनकी मृत्यु एक लम्बी सीमा तय कर चुकी है, तथापि उनकी साहित्यिक कृतियों और उपलब्धियों आज भी उनके साहित्यिक-व्यक्तित्व और काव्यगत प्रतिभा की जीवंत मिसाल है ।

हम मानते हैं कि युगबोध की कविता में सौष्ठवता तभी आती है, जबकि कवि का भोगा हुआ यथार्थ अपनी तमाम गतिविधियों को युग की परिधि में समावृत्त कर लेने को तत्पर रहता है । इसके लिए भाषा की सफाई और मंजाई आवश्यक है, और यह तभी सम्भव है, जब कवि प्रवृत्ति की पूरी परख रखता हो । प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा समाज की देन है । हमारा हिन्दी -काव्य इसी को आधार मानकर साहित्य के विकास और प्रगति में उन्मुख होता रहा है और कवि इसे ही अभिव्यक्ति में छंद की अनिवार्यता को महसूस करा है । 'नेपाली' इसी की समर्पित व्याख्या है । उन्होंने अपनी समस्त अनुभूतियों को एकरूपता देने के ख्याल से ही एक समुद्ध भाषा के रूप में हिन्दी का वरण किया । उन्हें हिन्दी पर गर्व था । वे चाहते तो हिन्दी में गद्य-प्रबन्ध की रचना कर सकते थे और किन्हीं खास परिस्थितियों में उन्होंने ऐसा किया भी है ।

पर मूलतः वे कवि थे और अन्त तक कवि ही रहे । वे मंच के कवि थे और काव्य के भी । उनकी कविताओं को सुना भी जाता था और पढ़ा भी । यानी कि श्रव्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में उनका समान अधिकार था । और सबसे बड़ी बात यह थी कि वे हिन्दी के कवि थे । छंद के कवि थे । उन्होंने कविता में परम्परागत काव्य-शैली का समावेश किया । उन्होंने एक स्थान पर लिखा है-

हिन्दी है भारत की बोली,

इसे अपने आप पनपने दो ।”

इनकी कविता में सूर, तुलसी, मीरा की काव्य परम्परा थी । शिवाजी, राण प्रताप की राष्ट्रीय भावना थी । आल्हा-ऊदल की लोकप्रियता थी । यह सही है कि नेपाली की कविता छंदमुक्त नहीं थी और न ही कभी वे छंदमुक्त कविता के पक्ष में थे । फिर भी उनकी कविता के आज के संदर्भ में शत प्रतिशत प्रासंगिक है । ‘नेपाली’ ने छन्दयुक्त रचना की हो या छन्दमुक्त इस पर बहस नहीं है । सवाल इतना ही है कि काव्य में छन्द के अतिरिक्त भी वस्तु-विधान और अभिव्यंजना शैली की महत्ता बरकरार रहनी चाहिए । नेपाली के साथ ऐसा ही हुआ है । उन्होंने अपनी रचनाओं में कल्पना का रंग जी भर कर चढ़ाया है ।

हृदय के अनुरागी वेग को मुक्त रूप से प्रवाहित होने दिया है । अर्थभूमि या वस्तुभूमि को काव्य का पूर्वनियोजित उपक्रम नहीं माना, बल्कि अभिव्यंजन के संदर्भ में इसकी उपादेयता को यथास्थान रखने का अटूट प्रयास किया है ।

यही कारण है कि नेपाली की कविता में पद्य-लालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृत्ति, शब्द प्रयोग की आदर्श-वादिता, काव्य की मर्यादा एक-के-बाद एक के क्रम में उभरती गई है ।

नेपाली की राष्ट्रीयता :

राष्ट्रीयता के संदर्भ में जब हमारी दृष्टि नेपाली पर जाती है तो एक साथ ही कवियों के समीक्षक उभर कर सामने आ जाते हैं । मुझ जैसा युवा पाठक जो अभी ठीक से साहित्यिक होश भी नहीं समझ सका है, हैरत में पड़ जाता है कि नेपाली को आखिर किस प्रकार की दृष्टि से किस कोटि में रखा जाय । क्या नेपाली में भारतेन्दु की तरह विविधता है ? क्या उनमें गुप्त जी की तरह विस्तार है ? क्या प्रसाद की तरह वे अपनी कविता में गहरे उतरते हैं ? क्या निराला की तरह उनमें विराट बोध है ? क्या उनके पास जगनिक और भूषण की तरह जनता को आन्दोलित करने के लिए कारण सामग्री हैं ? काफी सोचने और समझने पर नेपाली सबके समाहार ही लगते हैं । नेपाली की कविता जनता की जुबान पर तो विराजती ही हैं, उनकी भाषा में भी लिखी गयी है । साथ ही उसमें जनता की भावना भी शत-प्रतिशत अभिव्यक्ति मिलती है । यह बात बिल्कुल सही है कि नेपाली का कैनवास बहुत छोटा है , सीमित है, किन्तु उसमें जो पूर्णता है वह इस बात का प्रमाण है कि कोई कवि एक छोटी सी चीज लेकर अपनी निष्ठा तन्मयता और ईमानदारी के कारण गम्भीर बातें कह सकता है और जीवन से विभिन्न तत्व लाकर अपनी काव्य-सामग्री को मूल्यवान बनाकर स्वीकृति दिला सकता है । गुण और परिणाम दोनों दृष्टि से उन्होंने राष्ट्रीयता के इतिहास में नया परिच्छेद जोड़ा है ।

नेपाली का कवि व्यक्तित्व काफी जीवन्त है, जागरूक है । पराधीन देश को गुलामी से मुक्त करने के लिए जितनी बेचैनी उनमें देखी जाती है उतनी कम ही कवियों में दीख पड़ती है । नेपाली ने ' वन में आर्मी' के रूप में प्रत्येक चौराहे, नुक्कड़ और पगडण्डी को नापा है और अपनी ओजस्विनी वाणी में भारतीयों की सोई

हुई आत्मा को जगाया है । उन्होंने अपनी कविता में जनता की वास्तविक स्थितियों को ज्यों का त्यों रख दिया है । संभव है लाक्षणिकता और प्रतीक विधान की दृष्टि से नेपाली की कविता में वह मूल्य न मिले जो पंत, प्रसाद, निराला में मिलता है । किन्तु सरल भाषा में जो स्वाभाविक, अभिव्यक्ति नेपाली में मिलेगी वह दूसरे कवियों में नहीं ।

नेपाली की दृष्टि में पहले देश की स्वाधीनता है फिर मानवीय सद्भाव और समानता । वे देश की एकता के लिए धर्म और भूगोल की एकता समानरूप से स्वीकार करते हैं । उनका कवि मानता है कि अपने अधिकार की रक्षा हम खुद कर सकते हैं । हम अपने अधिकार को भीख मांगकर नहीं, लड़कर ही प्राप्त कर सकते हैं । इस लड़ाई के लिए सामाजिक संघटन पर कवि ने काफी बल दिया है । गुलाम देश की बात छोड़ भी दें तो आजाद देश के लिए भी नेपाली के लिए वही दृष्टि आदर्श है । नेपाली सत्ता को व्यक्तिगत जीवन से बाँधने वाले एवं व्यक्तिगत हित के लिए मरने वाले लोगों के जन्मजात दुश्मन हैं । सत्ता पर चाहे अंग्रेज रहे या हमारे भोगी नेता, नेपाली को उनसे सख्त नफरत है । नेपाली सत्तापरस्त नेताओं के नहीं जनता की आस्था और उसके अस्तित्व के कवि हैं । नेपाली में जनता के अधिकारों और उसके विवेक के प्रति सुलझी हुई दृष्टि है-

“ हम जिसे बनाना चाहेंगे, वह राजा होगा जनमत का,

हर नई किरण के लिए, खुला दरवाजा होगा आँगन का,

अब किले महल की दीवारें, रोकेंगी राह न जनता की । ”

रागिनी, उमंग और नवीन की रचनाओं में आपको अनेक ऐसे स्थल मिल जायेंगे जहाँ कवि ने जनता को हथियार उठाकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह छेड़ देने की प्रेरणा

दी है । उनका कवि अहिंसा का पक्ष लेता है । चीनी आक्रमण के समय नेपाली ने अपने संकल्प को बार-बार दुहराया है ।

मंदिर से चलो धाम के बन्दूक पुजारी
मस्जिद से चलो साथ ले तलवार दुधारी
राजपूत चलो, सिक्ख चलो, जाट चलो रे,
घर जिसने जलाया है चिता उसकी जला लो,
इस चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो । ”

नेपाली ने राष्ट्रीयता को धर्म, ईमान, समाज और अन्त में मनुष्य को एकता में परिणत कर दिया है ।

नेपाली स्वतंत्रता को सबसे अधिक महत्व देते हैं । ऐसे तो मानवीय समानता के प्रति भी उनकी कविता में तीव्र आग्रह है, किन्तु समानता के लिए यदि प्रशासन वर्ग स्वतन्त्रता को सीमित करना चाहे तो वह रूप नेपाली को स्वीकार नहीं । हमारे देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि इस देश ने अपनी दृष्टि मानवीय समानता और सद्भाव के लिए जितना अधिक खर्च किया है उतना स्वतन्त्रता के लिए नहीं । यदि समानता के आड़ में स्वतन्त्रता कट जाये तो कटी हुई स्वतंत्रता भविष्य की संभावनाओं से भी हमें काट देती है । इसी के चलते हमारी सीमा बधती गयी है, हमारा देश टूटता गया है । नेपाली ने 'हिमालय ने पुकारा' में अपने देश की सीमा फिर से बढ़ा लेने का संकल्प व्याप्त किया है-

हम शीश झुकायेंगे न फरियाद करेंगे
जो हमसे लड़ेगा उसे बर्बाद करेंगे
फिर साथ ही तिब्बत को भी आजाद करेंगे

मौका है यही देश की दिवार बढ़ा लो । ”

आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता के कई रूप मिलते हैं । जैसे- सांस्कृतिक राष्ट्रीयता, सामाजिक राष्ट्रीयता, नैतिक राष्ट्रीयता, धार्मिक राष्ट्रीयता और राजनीतिक राष्ट्रीयता । प्रसाद और निराला में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है तो गुप्त जी, माखन लाल जी और नवीन में सामाजिक राष्ट्रीयता । विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर में सांस्कृतिक आध्यात्मिक राष्ट्रीयता है तो दिनकर में सामाजिक-राजनीतिक राष्ट्रीयता है । दिनकर जी को जितनी चिन्ता भारत की राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था को लेकर है उतनी सांस्कृतिक व्यवस्था को लेकर नहीं । इसमें प्रसाद, निराला, आगे हैं ।

नेपाली की राष्ट्रीयता बहुत हद तक दिनकर से होड़ लेती है । क्योंकि नेपाली ने भी देश की अधोगति के लिए राजनेताओं को ही अधिक धिक्कारा है । ऐसे भारत के सांस्कृतिक मूल्य के प्रतीक हिमालय के प्रति भी प्रायः दोनों कवियों ने गम्भीर निष्ठा व्यक्त की है । हिमालय हमारी रक्षा का प्रतीक है । यह भारत की विराटता एवं उसकी ऊँचाई को अपने व्यक्तित्व के माध्यम से व्यक्त करता है । दिनकर जी को चिन्ता है कि इस देश की अधोगति होती जा रही है- “कितनी द्रुपदा के बाल खुले कितनी कलियों का अन्त हुआ ।” किन्तु यह हिमालय समाधि में ही डूबा रहा । नेपाली को चिन्ता इस बात की है कि चीन ने चोरी से घुसकर इस पर हमला बोल दिया है । नेपाली देशवासियों का आह्वान करते हुए लिखते हैं-

“ कहते हैं हिमालय जिसे, दिल्ली का किला है

भारत को जनमभूमि की झोली में मिला है,

आजाद हिमालय बिना, दिल्ली न रहेगी

तुम लाल किला और हिमालय को मिला लो ।

इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो ।

नेपाली ने कैलास, मानसरोवर, गंगा, यमुना, सरस्वती, वृन्दावन, मन्दिर, मस्जिद, गिरिजाघर आदि को राष्ट्रीय एकता के लिए काव्यात्मक रूप दिया । नेपाली की राष्ट्रीयता अपनी सीमा में भी असीम है । गुण और परिणाम दोनों दृष्टि से नेपाली इस क्षेत्र में गण्य है । उन्होंने राष्ट्रीय कविताएँ लिखने के लिए नहीं लिखी हैं । वे वस्तुतः राष्ट्रीय हैं । राष्ट्रीयता उनके संस्कार और चरित्र का अंग है ।

नेपाली ने अपनी काव्य-वीणा से राष्ट्रीयता के तार को कभी भी टूटने नहीं दिया । उनकी वाणी से सदैव यही अंकार निकलती रही -

“यह भगत सिंह की धरती है, गद्दार यहाँ कोई न रहे

गोविन्द, प्रताप, शिवाजी की तलवार कभी सोई न रहे ।”

नेपाली देश के कोने-कोने में राष्ट्रीयता का अलख जगाते शहीद हो गये किन्तु उनकी शहादत बार-बार हमें सोचने पर बाध्य कर देती है कि-

“पुण्य सताया जाय जगत में पाप सताया जायेगा

पर बलिदान सदा दुनियों को राह बताया जायेगा

यहाँ शहीद समय का ज्ञानी पापी जग नादान है ।

सबसे बड़ा वही है जग में जो होता बलिदान है ।”

जब राष्ट्र संकट में पड़ा हो तो सब कुछ छोड़कर केवल राष्ट्र रक्षा को ही सर्वोपरि कर्तव्य माना जाना चाहिए । नेपाली ललकारते हुए कहते हैं- “ दुनियों के सारे सिद्धान्त देश की स्वाधीनता के लिए है, स्वाधीनता सड़े-गले सिद्धान्तों के लिए नहीं है ।” नेपाली की राष्ट्रीयता में केवल ललकार पुकार और अक्रामकता ही नहीं है, उसमें भव्यता और समझदारी भी है । भारत अखण्ड भारत विशाल में देश की

विशालता अखण्डता और भव्यता का उदात्त चित्र है तो एक देश, एक राष्ट्र एक राष्ट्रभाषा में राष्ट्रीय एकता की मार्मिक अभिव्यक्ति है । पंत की भौति कवि ने भारत को माँ के रूप में देखा है और राष्ट्र रक्षा को मातृ रक्षा के समान माना है । यदि राष्ट्र की संस्कृति, राष्ट्र की एकता, राष्ट्र की सजग पहरेदारी और राष्ट्र की मिट्टी के कण-कण से अपने को तदाकार करना राष्ट्रीयता की सबसे बड़ी पहचान है तो नेपाली निश्चय ही हमारे देश के सबसे बड़े राष्ट्रीय कवि हैं-

“गिरिराज हिमालय मेरा है प्रहरी
प्रेमांजलि मेरी सागर की लहरी
मेरी मधुर उमंगे बन की कलियों ।
ये ग्राम-नगर मेरी जीवन-गलियों
मैं इसी देश की मिट्टी का पुतला
इसको जिसने कुचला, मुझको कुचला ।”

नेपाली का प्रकृति चित्रण :

हिन्दी साहित्य के काव्य कुंतज में कोकिल की सुमधुर तान छेड़ने वाले कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली' प्रेम के उन्मुक्त गायक ही नहीं, सौन्दर्य के कुशल चितरे भी हैं । जहाँ एक ओर इनका काव्य शृंगार रस की अतिशयता से ओत-प्रोत है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति-चित्रण की विलक्षणता से अनुप्राणित है । सच तो यह है कि कवि का सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण उसके प्रकृति चित्रण में स्पष्ट हो उठा है । इसीलिए तो श्री जर्नादिन झा 'द्विज' ने इन्हें हिन्दी का वर्ड्सवर्थ कह दिया है ।

प्रकृति शब्द का प्रयोग दो रूप में होता है- पहला मानवीय प्रकृति के रूप में और दूसरा मानवेतर प्रकृति के रूप में । मानव प्रकृति का अर्थ है जहाँ मानव स्वभाव के

रूप में स्वीकार किया जाता है, वही मानवेतर प्रकृति से मानव के अतिरिक्त समस्त सृष्टि का बोधक होता है । इसकी परिधि में पशु-पक्षी, वृक्ष, फूल, पर्वत, झरने आदि सब के सब चले आते हैं, अतः इस प्रकृति का अर्थ इतना व्यापक हो गया है कि इसके आगे मानवेतर लगाने की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है । जब कभी भी हम प्रकृति का नाम सुन लेते हैं , झरनों का संगीत हमारे कानों में गूँजने लगता है, कूकों की मुस्कान हमारी आँखों को मोहने लगती है और विहंगों का कलरव हमें अपनी ओर आकर्षित करने लगता है । कविता और साहित्य में मुख्यतः इसी प्रकृति का चित्रण होता है और इसी चित्रण से कवि की प्रतिभा और काव्य कौशल का मूल्यांकन भी होता है ।

यों तो प्रारम्भ से अंत तक , पर विशेष कर प्रारम्भिक रचनाओं में कविवर नेपाली का प्रकृति से गहरा तादात्म्य-भाव दीखता है । प्रकृति के सौन्दर्य में उन्हें बचपन में ही आकृष्ट किया था । कविवर पंत की जन्मभूमि 'कसौनी' की तरह कविवर नेपाली की जन्म-भूमि भी प्रकृति की क्रीड़ा स्थली ही थी । बचपन से ही वे किसी निर्झर के तीर अनगढ़ शिला पर बैठे घंटों प्रकृति का सौन्दर्य निहारा करते थे और तन्मय होकर गुगुनाने -गाने लगते थे ।

कंकड़-धूल, फूल-कॉटों का

वह वन-देश निराला रे !

चंचल जल में पोंव डुबोए

खेल रही वनबाला रे !

आँखों के नन्हें घेरे सी

घेर रही गिरि-माला रे ।

निर्झर तीर-शिला पर बैठा

कोई गानेवाला रे !

मधुर पदध्वनि, मधुर प्रतिध्वनि,

मुखरित मृदु संगीत परम !

कुंज-लता की एक आड़ में

जीवन सरल पुनीत परम ! ^१

उपर्युक्त पंक्तियों का 'कोई गानेवाला' और कोई नहीं, कविवर नेपाली ही हैं । प्रकृति सौन्दर्य के प्रति इसी सहज आकर्षण और तादात्म्य भाव के बल पर कवि ने निर्झर सरिता, धारा, कुंज-लता, पावस आदि के सैकड़ों मर्मस्पर्शी चित्र खिचे हैं । इन चित्रों में ताजगी और अनछुई मधुरिमा तो है ही, अनुभूति का सजीव संस्पर्श भी है । उदाहरण के लिए 'धारा' और 'पूर्णिमा' के दो छोटे चित्र सामने रखे जा सकते हैं । इन पंक्तियों में कवि ने 'धारा' का कितना सुन्दर 'मानवीकरण' प्रस्तुत किया है-

सुन्दर दर्पण सहज समर्पण

अंजलि में जल छल छल ।

सुख में सरला, दुख में तरला

मीठी वाणी कल-कल ! ^२

नेपाली की प्रसिद्ध कृति 'उमंग' की भूमिका लिखते समय छायावाद के मील स्तम्भ और प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने तो यहाँ तक कह दिया है- " आपका कवि कण्ठ, निर्मल, निर्झर के समान, अवश्य ही मंसूरी की तलहटी में फूटा होगा । इसलिए

^१ गोपाल सिंह 'नेपाली,' रागनी-वनश्री, पृ. १९

^२ वही, धारा, पृ. ३०

आपकी रचनाओं में जो उन्मुक्त वातावरण एवं स्निग्ध अनिलाताप मिलता है वह पाठक के हृदय की खिड़की खोलकर 'नरम दूध' बिछी राहों से, विलास की मंसूरी से जंगल की मंसूरी में ले जाकर प्रकृति की मनोरम भूमि में छोड़ देता है, जहाँ जंगल की हरियाली अंचल पसार कर उसका स्वागत करती है ।'' इस कथन के आलोक में कवि की निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है-

फूटा है मेरा कण्ठ यही रे, निर्मल निर्झर के समान
सीखा है मैने यही तीर पर सरिता के मृदुल सरलगान
सिखलाया है नित यहीं मुझे पंछी ने उड़ना पोंख खोल
है हुआ यहीं क्रीड़ा निकुंज में मेरे जीवन का विहान ।''

इस तरह उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर नेपाली के प्रकृति सौन्दर्य की भावना को देखा जा सकता है । नेपाली-साहित्य का अध्ययन के पश्चात् सामान्य पाठक भी स्पष्ट शब्दों में नेपाली को प्रकृति का अद्वितीय कवि घोषित कर सकता है । हिन्दी साहित्य में प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में घोषित श्री सुमित्रानन्दन पन्त प्रकृति पर आसक्त हैं, किन्तु नेपाली का कवि प्रकृति के साथ घुलमिल गया है , उसका अंग बन गया है । यही कारण है कि जहाँ पन्त का कथन है-

छोड़ द्रुमों की मृदुल छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाल ! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन ?

वही नेपाली यह स्पष्ट घोषणा करते हैं-

प्रकृति मुखिरित है वीणा एक

और मैं उस वीणा का तार

आचार्यों के मतानुसार काव्य में प्रकृति का उपयोग चार प्रकार होता आया है-

१. प्रस्तुत या आलम्बन विभाव के रूप में ।
२. उद्दीपन विभाव के रूप में ।
३. अलंकार के रूप में ।
४. प्रतीक, संकेत और परोक्ष सत्ता की अभिव्यक्ति के रूप में ।

छायावादी कवियों ने इसी आधार पर प्रकृति चित्रण किया है । इन सभी रूपों में प्रकृति का सर्वाधिक प्रयोग सुमित्रानन्दन पन्त ने किया है । प्रसाद के प्रायः उद्दीपन, प्रतीक और संकेत के रूप में ही प्रकृति चित्रण किया है । महादेवी वर्मा ने प्रकृति को अधिकतर परोक्ष-सत्ता की अभिव्यक्ति में ही प्रयुक्त किया है और निराला ने भी अपनी अधिकांश रचनाओं में प्रकृति को परोक्ष सत्ता से ही सम्बद्ध माना है । इस प्रकार प्रकृति चित्रण की सुदीर्घ भारतीय परम्परा का परिसंस्कार करने का श्रेय छायावाद को प्राप्त है । छायावादी कवि होने के बावजूद नेपाली का प्रकृति चित्रण परम्परा की परिधि में सिमटा हुआ नहीं है । नेपाली प्रकृति के उन्मुक्त गायक हैं, परम्परा के पोषक नहीं । इस प्रकार नेपाली का प्रकृति चित्रण सहजता से परिपूर्ण है, शास्त्रीयता से नियंत्रित नहीं ।

‘नेपाली का प्रकृति चित्रण सरल एवं स्वाभाविक है । कवि ने स्वयं लिखा है- “यही हरी-हरी दूब की ही महिमा है कि आज मेरे हाथ में बन्दूक की जगह लेखनी है ।” इस प्रकार नेपाली का आकर्षण स्वाभाविक रूप से प्रकृति के वास्तविक रूप पर हुआ है । यही कारण है कि शास्त्रीयता की रस्म-अदायगी के लिए उन्होंने प्रकृति सौन्दर्य को किसी कामिनी के श्रृंगार का कुंकुम, बना देना स्वीकार नहीं किया है और यही

प्रकृति के वास्तविक रमणीय चित्रों को छोड़कर उसे उद्दीपन विभाग का वाहिका बना देना ही उचित समझा है ।

नेपाली की रचनाओं में प्रकृति अपने वास्तविक सौन्दर्य के साथ उपस्थित हुई है । 'पीपल', 'हरीदूब', 'सरिता' आदि रचनाओं में इस तथ्य को स्पष्ट देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ-

“यह लघु सरिता का बहता जल, कितना शीतल कितना निर्मल
हिमगिरी के हिम से निकल-निकल, बह विमल दूध सा हिम का जल
कर -कर निनाद कलकल-छलछल, बहता आता नीचे पल-पल
तन का चंचल मन का विह्वल, यह लघु सरिता का बहता जल ।”^१

चेतन रूप में प्रकृति का चित्रण छायावादी कवियों की मुख्य विशेषता रही है । उन्होंने प्रकृति को सजीव माना है और उससे बातचीत भी की है । आलोचकों ने उसे ही मानवीकरण की संज्ञा दी है । नेपाली के प्रकृति चित्रण में भी यह विशेषता दृष्टिगोचर होती है-

“ आ मधुप मुकुल मन खोल-खोल
द्रुम के पक दाड़िम गोल- गोले
तरु के नव पल्लव डोल-डोल
वन-वन के पंक, बोल-बोल । ”^२

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने भी इसी तरह मधुप कुमारी को सम्बोधित किया है-

^१ गोपाल सिंह 'नेपाली' : उमंग-सरिता, पृ. ६८

^२ गोपाल सिंह 'नेपाली' उमंग-गीत, पृ. १३

‘सिखा दो ना हे मधुप कुमारी
 मुझे भी अपने मीठे गान
 कुसुम के चुने कटोरों से
 करा दो न कुछ - मधुपान ।’^१

पंत के इस चित्रण में सजीवता चाहे जितनी भी हो, सरलता और स्वाभाविकता नेपाली की पंक्ति में ही अधिक है । एक का ध्यान स्वाभाविक क्रिया की ओर है तो दूसरा सौन्दर्य की भावना से प्रेरित होकर मधुपान में मधुप का सहभागी बनना चाहता है । इस प्रकार जहाँ नेपाली की पंक्ति में प्रकृत सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रयास है, वहाँ पंत की पंक्ति में प्राकृत सौन्दर्य को भोगने की आकांक्षा है । एक सौन्दर्य को निरन्तर देखना चाहता है जिसके कारण सहजता है, दूसरे में विलक्षणता है जिसके कारण जटिलता है । वस्तुतः पंत का वह चित्रण जहाँ प्रबुद्ध रसिकों को रसास्वादन करने में सक्षम है वहाँ नेपाली का चित्रण जन सामान्य को भी मुग्ध करने में समर्थ है ।

नेपाली की इन पंक्तियों में प्रभात के प्रथम श्लोक के माध्यम से प्रभात का वर्णन दिया है- जो नेपाली के कवित्व का योग पाकर प्रभात का पहला श्लोक बोल उठता है-

“ मैं प्रभात का पहला - पहला श्लोक
 मैं चला पवन बनकर शीतल- शीतल
 मैं उड़ा चला निशि का खिसका आँचल
 मेरे स्वर में जगी कुंज की गलियों

^१ नेपाली, नवीन- मैं प्रभात का पहला-पहला श्लोक, पृ. ११

मुझसे लग कर हँसी नेवली कलियों

मैं चला झड़ी पखुड़ियों को चुनता

निर्झर था भरा गीत कहीं सुनता ।^१

किन्तु प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रभात के माध्यम से उसके प्रथम श्लोक का वर्णन है-

बीती विभावरी जाग री !

अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा घट उषा नागरी

खग कुल-कुल सा बोल रहा

किसलय का अंचल डोल रहा

लो यह ललिता भी भर लाई, मधु-मुकुल नवल रस गोगरी

नेपाली की पंक्तियों में जहाँ प्रभात के प्रथम श्लोक का स्पष्ट वर्णन है, वहाँ प्रसाद की पंक्तियों में 'किसलय का अंचल डोल रहा' से उनका आभास मात्र ! इस प्रकार नेपाली में जहाँ स्पष्टता है, वहीं प्रसाद में प्रतीकात्मकता ।

छायावादी काव्य में प्रकृति रहस्य भावना की पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रयुक्त हुई है । महोदवी ने लहराकर बहती हुई मधुर बयार में प्रियतम का सदेश सुना है और मिलन हेतु विकल होकर प्रकृति से ही अपने श्रृंगार के लिए भी अनुरोध किया है -

“जाने किस जीवन की सुधि ले

लहराती आती मधु बयार

रंजित कर दे यह शिथिल चरण

^१ नेपाली , नवीन : मैं प्रभात का पहला-पहला श्लोक, पृ. ११

ले नव अशोक का अरुण राग

मेरे मण्डन को आज मधुर

ला रंजनी गंधा का पराग । ”,

नेपाली के प्रकृति चित्रण में भी कहीं-कहीं यह रहस्य भावना पायी जाती है ।

उदाहरणार्थ इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

“डाली पर श्यामा बैठी है, अनुरागी मन गाता है ।

दूर देश से दूती आयी, कोई मुझे बुलाता है

आज अकेले एक वियोगी राह पूछता जाता है

कॉटे है कि मनचला राही, चिन्ह पिया का पाता है ।”^१

नेपाली के प्रकृति चित्रण में इन विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी विशेषताएँ भी हैं, जो इन्हें छायावादी कवियों से अलग करती है । नेपाली ने प्रकृति को अक्षय भण्डार मात्र मानकर चित्रित नहीं किया है, अपितु उसके द्वारा राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति की है । आलोचकों ने छायावादी काव्य को पलायनवादी काव्य की संज्ञा से अभिहित किया है, किन्तु नेपाली की प्रकृति पलायनवाद को प्रश्रय नहीं देती अपितु वह जीवन संघर्ष और कर्मवाद की प्रेरणा देती है । वह नस-नस में कर्मठता का सजीवन भर देती है ।

यौवन प्रेम और मस्ती के कवि :

आम तौर पर यौवन को अल्हड़ता और मस्ती को लापरवाही के रूप में देखा जाता है । कहते हैं- यौवन के उच्छल प्रवाह में बुद्धि निष्प्रभ हो जाती है । वह उस

^१ नेपाली, रागिनी- ‘वंदगी’, पृ. ११

प्रवाह को रोकना नहीं चाहती और वह विवश भाव से बगल खड़ी हो जवानी का तमाशा देखने लगती है ।

“यौवन के उच्छल-प्रवाह को,
देख मौन मन मारे,
सहमी हुई बुद्धि रहती है,
निश्छल पड़ी किनारे । ”

नेपाली की कविता यौवन और मस्ती की कविता है । नेपाली सैलानी मस्ती के कवि हैं । नेपाली की आकृति और प्रकृति यौवन और मस्ती से निर्मित है । कवि स्वयं कहता है-

पंचभूत का पुतला मुझको,
समझो तो नादानी,
यौवन की प्रतिमा पर
है मस्ती का पानी ।

उनका जीवन और काव्य दोनों मस्ती का काव्य है । चाहे उसके ऊपर जो भी रंग हो, ढंग हो, अथवा साज-सजावट हो किन्तु सर्वत्र मस्ती की आभा ही चमत्कृत करती है । नेपाली, बच्चन, आरसी इन सभी समकालीन कवियों में मस्ती का अपना अलग-अलग रंग, रूप और आकर्षण है । बच्चन 'हाला' के माध्यम से मस्ती की खुमारी में रहते हैं, आरसी दावानलके रूप में मस्ती का प्रभाव दिखाते हैं और नेपाली उसे इन्द्रधनुषी रूप देना पसंद करते हैं ।

बच्चन :

वह हाला कर शांत कर सके जो,

मेरे अन्तर की ज्वाला,
जिसमे मैं बिम्बित प्रतिबिम्बित,
प्रतिपल वह मेरा प्याला,
मधुशाला वह नहीं जहाँ पर,
मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्ती को मिलती,
मेरी तो वह मधुशाला ।”

आरसी :

जला करे नन्दन वन कोकिल का,
ऋतुपति का यह स्वर याद रहे,
आठो पहर चहकती तेरी,
मस्ती यह आबाद रहे ।

नेपाली :

एक अलग हम दीवाने है,
तन-मन में कुछ और भरा है,
सातों रंग घुले प्राणों में,
अब यह इन्द्रधनुष निखरा है ।

बच्चन, आरसी और नेपाली की उपर्युक्त पंक्तियों को दृष्टिपथ में रखा जाय तो तीनों की मस्ती काफी विलगता लिए हुए है । एक में हाला की मस्ती है दूसरे में ज्वाला की और तीसरे में न तो हाला है और न ज्वाला । वहाँ इन्द्रधनुषी रंगों की बहार

है । नेपाली की दृष्टि अल्हड़ है, उसे न तो किसी बात की चिंता है और न ममता ।

वे तो अपनी ही मस्ती में मस्त है और मस्ती ही उनका आनन्द है :

चिन्ता किसकी, ममता किसकी,

जग है, किसकी याद किसे है,

अल्हड़ जितने पड़े सड़ रहे,

नियमों का अपवाद किसे है ?

सम्भव है नेपाली की अल्हड़ता और लापरवाही के पीछे भी मस्ती का हाथ रहा हो । क्योंकि नेपाली ने अधिकांश स्थलों पर इसे स्वीकार भी किया है-

मैं तो भाई मस्ताना हूँ,

सुख-दुःख मैं क्या जानूँ,

पीड़ा भी होती है जग में,

यह कैसे मैं मानू ।

नेपाली का कवि अपने जीवन में दुःख और पीड़ा को कोई स्थान नहीं देना चाहता । नेपाली जीवन को उत्साह और उमंग के रूप में देखना पसन्द करते हैं । वे कतई स्वीकार नहीं करते कि यह जीवन रोने के लिए है और इस जीवन को दुर्वह भार समझकर हम सिर्फ़ दोने में ही अपनी शक्ति नष्ट कर दे । नेपाली आशावादी है :

‘वह तो मैं हूँ, जो हँसता हूँ,

मस्ती है, कुछ गाता हूँ,

जो रोते हैं, उन्हें मनाकर,

अपना गीत सुनाता हूँ ।’

नेपाली जवानी को ऐश्वर्य के रूप में नहीं, शालीनता के रूप में देखना चाहते हैं । नेपाली ने जवानी के लिए कुछ शर्तें रखी है-

मुट्ठी खोल चले जो जग में,

उनके लिए कहानी है,

जिनकी मुट्ठी बन्द जवानी,

उनकी बड़ी दीवानी है ।''

जवानी के सम्बन्ध में नेपाली अपने समकालीन कवि ' नवीन ' और माखन लाल से भी भिन्नता रखते हैं । नवीन की कामना है -

एक हिलोर इधर से आवे, एक हिलोर उधर से आवे,'

माखन लाल की कामना है :

द्वार बलि का खोल चल, भूडोल कर दे,

एक हिमगिरि, एक सिर का मोल कर दे,

मसलकर, अपने हरादों सी उठाकर,

दो हथेली है, कि पृथ्वी गोल कर दे,

रक्त है, या नसों में क्षुद्र पानी ?

जॉच कर, तू सीस दे देकर जवानी ।''

किन्तु नेपाली इसे बोधात्मक रूप देना चाहते हैं । कवि लिखता है-

कुछ ऐसा खेल रचो साथी,

कुछ जीने का आनन्द मिले,

कुछ मरने का आनन्द मिले,

दुनियाँ के सूने आंगन में,

कुछ ऐसा खेल रचो साथी ।

जो लोग जवानी को आवारागर्दी के रूप में देखते आए हैं उन्हें काफी गंभीरता से सोचना चाहिए कि जवानी के पास क्या व्यवस्था और नियम नहीं है । क्या उसके पास संकल्प और दिशा नहीं है ? क्या विश्व में जो भी क्रांतियाँ हुई उनका नेतृत्व हमारे युवकों ने नहीं किया है ?

नेपाली के सम्बन्ध में यह उक्ति ठीक बैठती है- “ जिस प्रकार वाल्टेयर ने प्रसिद्ध उपन्यास ‘ कैनडिडे’ में , रूसो ने ‘सोसल कान्ट्रैक्ट’ में, गोर्की ने ‘भदर’ में तथा प्रेमचन्द ने ‘गोदान’ में रूढ़ियों का विरोध किया है और नये मूल्यों की स्थापना के लिए नवयुवकों को एक रास्ता दिया है, उसी तरह नेपाली ने भी अपनी कविता में युवकों को सबसे अधिक महत्व दिया है ।

नेपाली की प्रगतिशीलता :

प्रगतिशीलता का सम्बन्ध मनुष्य की विकासमूलक प्रवृत्तियों और मानववादी भाव-वृत्तियों के साथ गंभीर रूप से जुड़ा रहता है । केवल बने-बनाये विचारों, आदर्शों और दर्शनों का खण्डन या मण्डन करना प्रगतिशीलता नहीं है । प्रगतिशीलता में निर्माण की अपरिमित शक्ति भी होती है । प्रगतिशील कविता ऐसी सृष्टि है, जिसमें कला अथवा रूप की प्रमुखता न होकर जीवन्त तत्वों की प्रमुखता होती है । वह मूलरूप से स्मूर्तिदायक, वीरता, व्यंजक तथा आशा और आस्था का सन्देशवाहक होती है । उसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति सुन्दर मानववादी संस्कृति की कल्पना एवं उच्च आदर्शों की संपृक्ति होती है । उसमें जीवन की असंगतियों और अंतर्विरोधों को समझकर विकासशील और प्रतिगामी शक्तियों का संघर्ष-चित्र प्रस्तुत किया जाता है । इस संदर्भ में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने बड़ी ही उपयुक्त बातें कहीं- “व्यक्ति का समाज के बीच चलने

वाले सामाजिक आदान-प्रदान को सचेत होकर ग्रहण करना काव्य-साहित्य को प्रगतिशील ही नहीं, उत्थानमूलक भी बनाने में उपयोगी सिद्ध होगा । किसी बँधी-बँधाई लीक अथवा नपे-तुले आदर्शों के आधार पर साहित्य की प्रगति अथवा उसका उन्नयन नहीं हो सकता । बदलते हुए समय के साथ प्रगतिशीलता का मार्ग भी बदलेगा ।” आचार्य वाजपेयी का उपर्युक्त कथन इस बात को सिद्ध करता है कि प्रगतिशील कविता जीवन की विकासमयी उपलब्धियों को निरन्तर समेटती चलती है । वह कविता बदलते हुए युग के बदलते हुए आदर्श के प्रति हमेशा संवेदनशील होती है । यदि ऐसी बात नहीं रहती तो नेपाली कतई नहीं लिखते कि-

अब घिस गई समाज की तमाम रीतियों
अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियों,
है दे रही चुनौतियों तुम्हें कुरीतियों,
निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो ।

नेपाली की उपर्युक्त पंक्तियों इस बात का प्रमाण है कि प्रगतिशीलता चिर काल से आ रही जीवन-प्रकृति है, काव्य-प्रवृत्ति नहीं । नेपाली की उपर्युक्त पंक्तियों से यह भी लक्षित होता है कि उनके कवि में जीवन के प्रति गंभीर आस्था है, परिवर्तन की पहचान है और है उपचार तथा कलात्मक स्वरूप के प्रति गहन रुचि । वह नवीन समस्याओं का भावात्मक हल ही नहीं, बोधात्मक हल भी करना चाहते हैं । यही कारण है कि “ निज राष्ट्र के शरीर के श्रृंगार के लिए” वे देश में रहनेवाले नागरिकों में व्याप्त स्पन्दनों को सूक्ष्म गति देना चाहते हैं ।

नेपाली की कविता में अंतरंग और बहिरंग का अपूर्व वैविध्य दिखाई पड़ता है । उनकी कविता में भागवत और शिल्पगत अनेकरूपता दिखाई देती है, फिर भी उनके जीवन और काव्य में अपने समकालीन कवियों की तरह अंतर्विरोध नहीं है । क्योंकि उनके समकालीन कुछ ऐसे भी कवि हैं जो कविता में उन्हीं मूल्यों का विरोध करते रहे हैं जिसका जीवन में आश्रय लेकर अपने को सुरक्षित रखते रहे हैं । नेपाली ने अपनी सुरक्षा खुद की है और जीवन तथा काव्य की विषमता मिटाने के लिए जूझते रहे हैं । सम और विषम परिस्थितियों में नेपाली को अपनी सीमा में आबद्ध नहीं किया है । यही कारण है नेपाली का काव्य किसी भी 'वाद' के चौखटे में आबद्ध नहीं है । उनका समस्त साहित्य "वादों" की सीमा से परे, मानवीय अनुभूतियों का काव्य है । वैसे सभी 'वादों' के प्रमुख तत्वों का समाहार उनकी कविता में दिखाई देता है किन्तु सच तो यह है कि नेपाली की कविता वादी नहीं है । आरम्भ से अंत तक उसमें एक जीवन्त, जागरूक तथा संवेदनशील व्यक्तित्व का अबाध प्रसार है, जो न तो शत-प्रतिशत स्वच्छन्दतावाद की प्रापित सीमाओं में बँधता है न छायावाद की, न रहस्यवाद की, न प्रगतिवाद की अथवा प्रयोगवाद की । 'वाद' उन्हें निःशेष नहीं करते, वे ही वादों को निःशेष कर देते हैं । नेपाली की कविता साहित्यिक अर्थों में सर्वथा प्रगतिशील कविता है, उनमें आधुनिक युग की वृहद-भाव-धारा पूर्णतः समाहित है ।

नेपाली की कविता में सामाजिक जीवन की विषमता, मानवीय संवेदना, आत्म सौन्दर्य की झलक, राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की प्रबलता और रागात्मक भावोन्मेष की प्रधानता है । नेपाली में सैलानी मस्ती है फिर भी उनमें असीम पौरुष्य है, विद्रोह करने की शक्ति है । समसामयिकता और निरन्तर विकासशीलता उनकी काव्य-साधना का प्रतिफल है । एक ओर उनमें भावात्मक ओजस्विता है तो दूसरी ओर उर्जस्वित

काव्यानुभूति । उनमें राष्ट्रीय तेजस्विता, संघर्षशीलता और जीवन के प्रति अटूट आस्था है । एक स्थल पर वे लिखते हैं-

‘जन्म ज्योति, युग, प्रेम, जवानी लगते सदा नवीन ।

मृत्यु तिमिर, जग विरह, बुढ़ापा लगते हैं प्राचीन,

हँसता एक, दूसरा दृग में अश्रु लिए श्री हीन,

और बाल-रवि ज्योति उड़ा ले चला अश्रु भी छीन ।

जीवन के अवसाद और आनन्द दोनों की तीव्र अनुभूति कवि को है ।

“बाल-रवि” के माध्यम से कवि ने जिस ‘ज्योति’ का अवलोकन किया है वह उसकी आस्था और आत्मज्ञान का ही रूप है ।

नेपाली का कवि अपने जीवन का लक्ष्य मानवता की आराधना मानता है-

मेरा जीवन साध्य नहीं है, साधन ,

मेरा लक्ष्य, मानवता का आराधन । ’

वह जीवन को साध्य नहीं साधन मानता है । साधन के बिना साध्य की प्राप्ति असंभव है । जीवन यदि साधन है तो उसमें उपभोग का भाव निहित है, वितृष्णा का नहीं । यही कारण है कि छायावादी युग में अपनी काव्य-साधना की शुरुआत करनेवाला यह कवि छायावादी कवियों से काफी विलग नजर आता है । नेपाली का कवि कभी भी पलायनवादी नहीं रहा । उसमें न तो निराशा और दुःख की अतिशयता है और न आत्म-पीड़ा का आधिक्य है । वह कल्पना के नन्दन-कानन में नई-नई सूझों के अनुसंधान में कभी भी अपनी तृप्ति खोजते नजर नहीं आया । उसने सदैव इस बात का ध्यान रखा कि यह भी इसी समाज का प्राणी है और उसके आनन्द में दूसरे का भी सहभाग है । यही कारण है कि नेपाली की वैयक्तिक चेतना आत्मोन्मुखी

कम, वस्तुमुखी अधिक है । उसकी प्रतिभा भले ही गीतात्मक है, किन्तु उसके गीतों में सारगर्भ ध्वन्यात्मकता है, जो उसे पसरने और फैलने के लिए उपयुक्त अवकाश देता है ।

लोकप्रियता की दृष्टि से, उसके समकालीन कवियों में 'बच्चन' उसके समस्पर्धी दीख पड़ते हैं । किन्तु अपनी कविता में वे छायावाद की विरासत-वैयक्तिक निराशा एवं वेदना लेकर आये । छायावाद की काल्पनिक निराशा एवं वेदना लेकर आये । छायावाद की काल्पनिक निराशा उनकी कविता में सजीव दीख पड़ती है । किन्तु भाषिक संवेदना के कारण बच्चन अपने समकालीन कवियों को पीछे छोड़ देते हैं । उनमें घरेलू वातावरण है, स्वाभाविक शैली है, अकृत्रिम मानसिक सौन्दर्य है, प्रचलित प्रतीक है, सुलभ लय है और चमत्कारपूर्ण तुक है । नेपाली ने अपनी कविता में भाषा की इन संभावनाओं का अनुसंधान (बच्चन की रचनाओं से) पहले किया है और उसे अपने भावानुकूल स्वरूप दिया है । यही कारण है कि इनकी रचना बच्चन की तरह ही तुरन्त पाठकों को अपनी ओर खींच लेती है, उनकी जिह्वा पर थिरकने लगती है ।

नेपाली की प्रगतिशील चेतना द्वारा उद्घाटित होकर वैयक्तिक नहीं अपितु व्यक्ति द्वारा उद्घाटित वस्तु-मुखी है । उन्होंने अपनी कविता में सामान्य जनता को व्यक्तित्व के स्तर अधिष्ठित करने का प्रयास किया है । मानव-व्यक्तित्व में नये बोध, नई आस्था, नयी शक्ति और नयी चेतना की आपूर्ति करने के लिए उन्होंने कहीं भी अपने को ओझल नहीं किया है । नेपाली की प्रगतिशीलता इस बात में निहित है कि उन्होंने अपनी कविता में सामान्य मनुष्यकोयुग-परिवेश जन्य स्थिति से निकालकर अनुभूति के स्तर पर पहुँचा दिया है । उस मानव व्यक्तित्व के माध्यम से कवि ने अपने जिए हुए जीवन सत्य की सहजता को काव्य-स्तर पर व्यंजित किया है ।

नेपाली के काव्यों में गीति-तत्व :

काव्य के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं- प्रबन्ध और मुक्तक । पूर्वापर सम्बन्ध पर आधारित काव्य, जिसमें कोई कथा क्रमबद्ध रूप में कही गयी हो, प्रबन्ध काव्य कहलाता है । इसके विपरीत स्वतंत्र भाव व्यक्त करनेवाले काव्य को जिससे किसीरस का उद्रेक होता है मुक्तक कहते हैं । यही मुक्तक जब सुर, लय, और ताल का आश्रय लेकर गेय बन जाता है तब गीति या प्रगीत काव्य कहलाता है ।

गीति काव्य के तत्त्वों के आधार पर मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि नेपाली जी के गीतों में भाव प्रवणता उच्चकोटि की है जिनमें प्रेमादि विविध भावों का सहज व स्वाभाविक सफुरण हुआ है । कवि का वैयक्तिक निश्चल प्रेम-भाव निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है -

प्रिय, प्रेम की फुलवारी यह विरुवा यहाँ लगायेंगे ।

छीट-छीट विरुवे पर पानी पिय की ज्योति जगायेंगे ।

सुख-दुःख के इन सहवासों में, री रोना भी पड़ता है ।

इतना यहाँ भार अपना है, जग को नहीं रुलायेंगे ।

प्रेम की तन्मयता की अवस्था में प्रेमी-प्रेमिका के मनोभावों का चित्रण भी कवि ने खूबी के साथ किया है । दो हृदय जब आपस में मिलते हैं तब उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता । प्रेम-पयोद से परिपूरित हृदयाकाश में विचरनेवाले ये विहंग प्रतिपल सुधारस सिक्त होते रहते हैं ।

गेयता या गीतात्मकता की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि नेपाली जी की सारी की सारी रचनाएँ गेय एवं गीतात्मक है । वस्तुतः गेयता में ही गीतिकाव्य का

सहज स्वाभाविक रूप सुरक्षित रहता है । कविवर 'नेपाली' की 'पंछी' को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ गीतिकाव्य की इस विशेषता से युक्त हैं ।

मौसम है, रंगरेज गुलाबी

गाँव नगरिया रंग दे रे ।

प्रभावान्विति गीतिकाव्य की एक आवश्यक विशेषता है । जिस काव्य में प्रभावान्विति जितनी अधिक होती है वह काव्य उतना ही सुन्दर एवं मार्मिक होता है । बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था का कैसा प्रभावोत्पादक चित्र खींचा है कवि ने यह नीचे दृष्टव्य है-

तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो ।

अब घिस गई समाज की तमाम नीतियों ।

अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियों

दे रही चुनौतियों तुम्हें कुरीतियों

निज राष्ट्र के शरीर के शृंगार के लिए

तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो ।

गीतों की संक्षिप्तता उसकी सबसे बड़ी विशेषता होती है । विस्तार से उसके प्रभाव में कमी आ जाती है । कल्पना के कृत्रिम प्रयोग से जब कवि अनुभूति का वर्णन विस्तार करता है तब गीतिकाव्य की आत्मा को हानि पहुँचती है । इस दृष्टि से मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि 'नवीन', 'उमंग', एवं 'रागिनी' के कुछ एक गीतों को छोड़कर शेष सभी गीत लम्बे हैं और दीर्घता के कारण प्रभावान्विति का अभाव सा परिलक्षित होता है ।

उपसंहार

छायावादोत्तरगीतिकाव्य में गोपाल सिंह 'नेपाली' का विशिष्ट योगदान-समग्र मूल्यांकन

जब किसी नयी साहित्य-धारा का प्रारम्भ होता है, तब उसे पहले तीव्र विरोध का सामना करना पड़ता है । यदि उस आन्दोलन में विरोध और आलोचना को सहने की शक्ति होती है तो वह धारा विकसित होती है और अपने विकास क्रम में उसे उपलब्धियों की प्राप्ति होती है और अन्त में अनेकानेक आलोचनाओं का सामना करके वह आन्दोलन प्रतिष्ठित हो जाता है । प्रारम्भ में छायावादोत्तर काल को भी अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा । किन्तु कवि की दिशा सुनिश्चित होती है । कवि नेपाली ने किसी विरोध की परवाह न की और अपने कर्तव्य के दत्तचित्त रहे, यही कारण है कि छायावादोत्तर हिन्दी कविता में अब तक जितनी उपलब्धियाँ हुई हैं उनमें कवि नेपाली का योगदान किसी भी हिन्दी कवि से अधिक ही है ।

छायावादोत्तर काव्यधारा के आधार स्तम्भों में से एक कवि नेपाली ने अनन्य अनुभूतियों को ही जीवन का समूह बनाया । कवि 'बच्चन' के अनुसार- कभी अवसाद भरी तो कभी आह्लाद भरी , कभी उत्थान को कभी गम्भीरतम् अनुभूतियाँ ही जीवन को दुःखमय और सुखमय बनाती है । कवि की कल्पना ही अमूर्त को मूर्त और अपरिचित को परिचित बनाने की शक्ति रखती है । छायावादी युग में तो गीतिकाव्य का एकान्त भाव से प्रणयन हुआ ही , उसके अनन्तर भी हिन्दी कविता गीतों की पायल से मुक्त नहीं हो सकी अपितु गीतों की मधुर झंकृति अपनी तीव्रतम गति के साथ आलोड़ित हो उठी । छायावादोत्तर गीतों का जो बहुरंगी संगीत के तप्त स्वरों के साथ हिन्दी में निनादित हो उठा उसकी गहराई, व्यापकता, और शिल्पगत उपलब्धियों का

आंकलन सरल कार्य नहीं । इस संक्रान्ति काल में जिन कवियों का गीति स्वरूप माधुरी हिल्लोरित हुई उनमें कवि गोपाल सिंह नेपाली का स्थान अग्रणी है । उनकी कविता नितान्त व्यक्तिगत है जो आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारधाराओं का सेतु है । जीवन को जीतकर कृषक की भौति को बोलने और कहने वाले प्रगतिवादी कवि के लिए गीत लिखना जीने की आवश्यक शर्त के रुझान है । छायावादोत्तर काव्यधारा के कुछ गुणों का ही पुनर्जन्म प्रगतिवादी गीतों में इठलाता मचलता और नये-नये स्वरों में झूमता दिखाई पड़ता है । अपनी पिछली काव्य परम्परा से किसी न किसी अंश में सम्बद्ध होने के कारण इन नव्योत्तर गीतकारों ने विचार और शिल्प के क्षेत्र में कोई मौलिक नहीं की । शिल्पगत समृद्धि और रंगीन मोहक कला की दृष्टि में प्रयोगवाद ही शिल्प के खाते में कुछ जोड़ सका है ।

नई कविता तक आते-आते गीतों के दिन लद गये, सिर्फ बहुप्रचलित खेमों, बहुरंगी कोलाहल को ही गीतों की शोभा बढ़ाने वाला गुण समझा जाता था । यही कारण है कि नये गीतों में कवित्व को देखकर पाठक समुदाय जितना चौंका है उतना उसे ग्रहण करने की स्थिति में नहीं है । इधर जिस नवगीत की चर्चा सुनाई दे रही है, उसका स्वरूप इन नुमाईशी और फरमाईशी गोष्ठी गीतों से सर्वथा भिन्न और आधुनिक है । मेरे विचार में नया गीत गाने के लिए नहीं अपितु केवल पढ़ा जाने के लिए लिखा जाता है, यदि नई कविता से भिन्न वह गीतिकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है तो मुख्यतः इस अर्थ में उसमें गीत की तरह एकोन्मुखी या केन्द्रभूत वृत्ति का आवर्तन है । वस्तुतः इन विधाओं में कोई तात्त्विक विरोध नहीं है, अपितु प्रगीत का नवगीत में ही समाहार हो जाता है ।

यही कारण है कि साठोत्तरी गीतकारों की संरचनाएँ तो नई कविता के समानान्तर ही नहीं अपितु अनेक अर्थों में उसके आगे की मन्जिल का पता दे रही है । गीतकारों का आग्रह नये के प्रति न होकर कविता के प्रति है। भावुकता का कोई भी रूप उन्हें स्वीकार्य नहीं है, किन्तु नवगीत भावुकता विरोधी होते हुए भी, विशुद्ध बौद्धिक नहीं है, ये केवल संवेगात्मक है जिसे दिल और दिमाग के खाने में बांटकर नहीं समझा जा सकता ।

हिन्दी गीतिकाव्य की परम्परा कवि 'बच्चन' से ही सशक्त रूप से आरम्भ होती है । जिसका अनुसरण उनके युग के अन्य कवियों के काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, उन कवियों में कविवर नेपाली का स्थान सबसे अग्रणी है । अब तक छायावादी काव्य के प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा के अनन्त जीवनोल्लास, अदम्य कर्मठता और अप्रतिहत संकल्प शक्ति के गीतों का गुंजार ही हो रहा था पर अब वहाँ निराशा, विषाद और व्यक्तिगत भावना के निकट नहीं हो पाया, किन्तु उन्हें साहित्य अघातों का सामना नहीं करना पड़ा , क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिकता का कवच पहन रखा था, वहीं दूसरी ओर छायावादोत्तर कवि ' वच्चन', नेपाली,' नरेन्द्र शर्मा ने काव्य में व्यक्तित्व की भूमिका को प्रतिष्ठित कर जन मानस के निकट पहुँचाया ।

कवि नेपाली की शैली में स्पष्टता है और व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष निवेदन के कारण ही हिन्दी गीतिकाव्य की उस धारा का उन्मेष हुआ , जिसके माध्यम से नेपाली ने नवीन काव्य शैली और नवीन छन्दों की उद्भावना अपने गीतों के माध्यम से व्यक्त की । इसके अतिरिक्त कवि ने अपनी काव्य भाषा के स्वरूप का भी पर्याप्त परिवर्तन किया और काव्य के बोल चाल की भाषा के समीप लाने का प्रयास किया ।

कवि नेपाली की काव्य-चेतना के विकास की जो व्यापकता और गम्भीरता की मुख छटा देखने को मिली । कवि नेपाली ने भगवान की अपेक्षा मानव को ही काव्य गीतों का लक्ष्य बनाया है । क्योंकि उससे हटकर साहित्य का उनकी नजर में कोई मूल्य नहीं है । दुःख को जीवन की साधना मानने वाले कवि नेपाली दुःख रूपी 'हलाहल' को हंसते हुए पीकर केवल कर्मण्यतावादी बन भविष्य के कष्टों को झेलने के लिए युवा वर्ग को तैयार रहने का पाठ पढ़ाते हैं । क्योंकि कवि अपने हर्ष, विषाद, आनन्द, प्रेम, वियोग, करुण और पलायन के भावों की अनुभूति करते हुए काव्य प्रयोजन करते हैं । वास्तव में काव्य का प्रयोजन आनन्द और लोकहित की भावना है ।

कविवर नेपाली का युग सन्देह का युग था । उनका पारिवारिक परिवेश एक फौजी का था । इसलिए कवि नेपाली ने एक बड़े ही ईमानदारी से फौजी के सामान बन्दूक से नहीं बल्कि कलम से वतन की रक्षा की है । असल में कवि नेपाली जिस युग और समाज में पैदा हुए थे, वह जर्जर नैतिकता और अन्धविश्वासों से ग्रस्त सामाजिकता का युग था । कविवर नेपाली की रचना पर एक सजग प्रहरी हिमालय के सामान होने का स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ता है । वे अपनी रचनाओं से देश के युवा वर्ग को बार-बार देश की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते अपनी जान हंसी खुशी से दे देने की बात करते हैं ।

एक प्रकार से देखा जाय तो कविवर नेपाली का युग सुधारवादी युग था । कवि नेपाली ने ऐसे युग में अपनी वाणी के द्वारा समाज तथा व्यक्ति को पूर्णता और आनन्द प्रदान किया । गीतों की दुनियाँ में तो एक प्रकार की क्रांति सी आ गयी । कविवर नेपाली जहाँ जाते वहाँ ही वह वाह वाही लूटते । यही वजह है कि कवि नेपाली

साहित्य की दुनिया से अलग होकर फिल्मों के गीत लिखने लगे और वहाँ भी वह छाये रहे । कविवर नेपाली के विषय में कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों की उक्ति इस प्रकार है :

‘निराला’ जी के अनुसार- मुझे इनके काव्य में शक्ति, प्रवाह, सौन्दर्य-बोध तथा चारु चित्रण एक विशेषता लिए हुए देख पड़े । कविवर ‘पंत’ जी के अनुसार- “ आपकी सरस्वती स्नेह, सहृदयता और सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा है । आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के अनुसार- अंग्रेजी के तीन महाकवि मिल्टन, कीट्स और शेली कविवर नेपाली के रूप में हिन्दी में अवतरित हुए हैं । कविवर श्री रामधारी सिंह ‘दिनकर’ के अनुसार - श्री गोपाल सिंह ‘नेपाली,’ जिनके नाम के साथ स्वर्गीय शब्द जोड़ने में आज भी हृदय फटने लगता है । हमारे रस सिद्ध कवि और जनता के हृदयहार थेउन्होंने जो भी कुछ लिखा है, वह सबका सब रक्षणीय है । कविवर नेपाली के विषय में डॉ. आशा किशोर का कथन है कि- नेपाली निश्चय ही हिन्दी गीतिकाव्य के क्षेत्र में अपनी मस्ती भरी शैली, प्रवाहपूर्ण छन्दों एवं मर्मस्पर्शी भावों की दृष्टि से अमर स्थान के अधिकारी हैं । फिल्म अभिनेत्री नसीम बानू के अनुसार- मुझे तो कहा गया था कि दुनियाँ में सबसे मीठी जुबान उर्दू और फारसी है । इसलिए इन दोनों भाषाओं को मैंने सिखा भी । लेकिन आज नेपाली की कविता सुनकर कहना पड़ता है कि दुनियाँ में सबसे मीठी जुबान हिन्दी है । डॉ. राम प्रवेश सिंह के अनुसार- “नेपाली ने अपनी कविता में यौवन और मस्ती के माध्यम से युवा मूल्य को नई दृष्टि दी है ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक का नाम</u>
१. डॉ. अजब सिंह	स्वच्छन्दतावाद : छायावाद आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८७ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७५ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९७ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९८
२. डॉ. नगेन्द्र	आस्था के चरण आधुनिक हिन्दी की मुख्य प्रवृत्तियों विचार और अनुभूति विचार और विश्लेषण	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६८ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६६ नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, दिल्ली, १९५१ नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, दिल्ली, १९६१
३. डॉ. रामधारी सिंह	काव्य की भूमिका 'दिनकर' शुद्ध कविता की खोज कुरुक्षेत्र	उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना, १९५८, उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना, १९६६-१९७७
४. डॉ. रामेश्वर लाल	सृजन, समीक्षा और शोध खण्डेलवाल 'तरुण'	नीरज बुक सेन्टर, दिल्ली, १९९८
५. रजनी पामदत्त	आज का भारत	दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, १९७७
६. बालकृष्ण शर्मा	हम विषयी जनम के 'नवीन'	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६४
७. हरिवंश राय	एकान्त संगीत 'बच्चन' संत रंगिनी	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, ६ठां संस्करण, १९६१, १९४५
८. सिद्धेश्वर प्रसाद	छायावादोत्तर काव्य	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६६
९. कमला प्रसाद	छायावादोत्तर हिन्दी पाण्डेय काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	इलाहाबाद, रचना प्रकाशन, १९७२
१०. डॉ. सुरेश गौतम	छायावादोत्तर हिन्दी गीति काव्य	प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, १९८५

११.डॉ. विनोद गादरे	छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत	वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली, १९७५
१२.डॉ. मंजू गुप्ता	आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान	मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, दिल्ली
१३.डॉ. आशा किशोर	आधुनिक हिन्दीगीति काव्य का स्वरूप और विकास	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७१
१४.लीलाधर त्रिपाठी 'प्रवासी'	गीतिकाव्य का विकास	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९६१
१५.डॉ. गणेश खरे	आधुनिक प्रगीत काव्य	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६५
१६.राम खेलावन पाण्डेय	गीतिकाव्य	महताब राग, ज्ञान मण्डल (मंत्रालय) लिमिटेड, बनारस, सं. २००४
१७.नरेन्द्र शर्मा	आधुनिक काव्य	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६७
१८.सुमित्रा नन्दन 'पंत'	छायावाद : पुनर्मूल्यांकन	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६५
१९.'नीरज'	बच्चन : एक युगान्तर	स्टार पब्लिकेशन, दिल्ली, १९६५
२०. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	लालचूनर	अवध पब्लिकेशिंग हाउस, लखनऊ, १९४४
२१.प्रभाकर माचवे	व्यक्ति और वाङ्मय	साहनी प्रकाशन, दिल्ली, १९५२
२२.डॉ. लक्ष्मी नारायण दूबे	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' व्यक्ति एवं काव्य	हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९६६
२३.डॉ. विश्वम्भर उपाध्याय	आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९६३
२४.प्रतापनारायण टण्डन	आधुनिक साहित्य	विवेक प्रकाशन, लखनऊ
२५.क्रान्ति कुमार	नई कविता	मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९७२
२६.कमल कान्त पाठक	आधुनिक हिन्दी काव्य भाग-२	श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर सं. २०१२
२७.डॉ. गुलाब राय	'सिद्धान्त और अध्ययन'	आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली
२८.डॉ. नामवर सिंह	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों	लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, १९६८
२९.महादेवी वर्मा	कविता के नये प्रतिमान	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६८
३०.अज्ञेय	दीपशिखा, भूमिका, तारसप्तक	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
३१.सं.ही.वात्स्यायन	आलवाल, पृ.स.	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, १९६०
३२.डॉ. बलराम	गोपाल सिंह 'नेपाली' जीवन और साहित्य	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७१
३३.अवधेश्वर 'अरुण'	स्वाधीन कलम नेपाली	विद्यार्थी साहित्य संगम, बेतिया, बिहार, १९८३
३४.गोपाल सिंह	'रागनी - वनश्री'	हंसराज प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, बिहार, १९८२

‘नेपाली’ ‘रागनी - धारा’
 ‘उमंग-सरिता- दिल्ली ज्ञान प्रकाशन
 उमंग गीत- सन् १९३८
 नवीन ‘मैं प्रभात का पहला
 पहला श्लोक
 रागिनी - ‘वन्दगी’

ENGLISH BOOKS

- 1- Encyclopaedia Britanica, Vol. XVIII- Revised Edition, 9th Ed. Edinting, 1949, U.S.A.
- 2- G. Sainsbury-A First Book of English Literature
- 3- John Drink Water – The Lyric, London, 1922
- 4- S.T. Coleridge- Poetry-The best ward- July 12, 1927
- 5- F.T. Palgrave- Golden Treasury of Songs and lyric Preface.
- 6- W.R. Robgers in a Breadcast, B.B.C. May, 1857
- 7- P.B. Shalley- A Defence of Poetry
- 8- Edgar Allaue Poe- Essays on the poetics Principles
- 9- A.R. Autiwistalan - The Study of Poetry

हिन्दी कोश

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, ज्ञान मण्डल प्रकाशन,
 वाराणसी, २०२० विक्रमी ।

- हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
 भाग-२,